राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

का

परिचय

मा० गो० वैद्य

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

का

परिचय

मा. गो. वैद्य

विचार विनिमय प्रकाशन
नई दिल्ली - 110055

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
का परिचय

लेखक :
मा. गो. वैद्य

© लेखक

प्रकाशक :
विचार विनिमय प्रकाशन
द्वितील मंजिल, 41 एमएम रोड़,
रानी झांसी मार्ग, झण्डेवाला, नई दिल्ली-110055
दूरभाष : 011-23536244, 23536245
ई-मेल : vimarshprakashan@gmail.com

ISBN : 978-81-930892-1-7

चतुर्थ संस्करण :
अगस्त 2019

मूल्य : ₹ 25

मुद्रक :
एम.के.प्रिंटर्स, दिल्ली
9811749661,mk1857@gmail.com

विषय सूची

1.	देशभक्त केशव	5
2.	सार्वजनिक कार्य का अनुभव	9
3.	संघ की स्थापना	13
4.	संघ का नाम	17
5.	स्वयंसेवक	21
6.	राष्ट्रीय अर्थात् क्या?	25
7.	संघ के कार्यक्रम	31
8.	संघ के आयाम	35
9.	संघ की रीति	42
	परिशिष्ट-1 संघ के सरसंघचालक	45
	परिशिष्ट-2 संघ की प्रार्थना	52
	परिशिष्ट-3 एकात्मता - मन्त्र	55

देशभक्त केशव

अपने संघ का सम्पूर्ण नाम है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना डा. केशव बलिराम हेडगेवार ने नागपुर में की। संघ स्थापना का दिन था विजयादशमी, यानी दशहरा और ईसाई वर्ष 1925 था। कौन थे डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार? उनका जन्म एक सामान्य ब्राह्मण पुरोहित परिवार में हुआ था। वह दिन था वर्ष प्रतिपदा। ईसाई वर्ष 1889 था। डॉ. हेडगेवार के दो भाई थे। दोनों उनसे बड़े थे। सबसे बड़े भाई का नाम था महादेव शास्त्री और मंझले भाई थे सीताराम शास्त्री। डॉक्टर हेडगेवार सबसे छोटे थे।

हेडगेवार कुल मूलतः तेलंगाना (आन्ध्र) का था। परिवार नागपुर में आकर बसा था। डॉक्टर जी का जन्म नागपुर में हुआ। उनके पिताजी व्यवसाय से पुरोहित थे। स्वाभाविकतः घर में निर्धनता थी, किन्तु विवशता-लाचारी कभी नहीं रही। निर्धन रहने पर भी स्वाभिमान से जीने वाला यह परिवार था। स्वाभिमान (आत्म-गौरव) का यह गुण विरासत में मानो मां के दूध से ही बालक केशव को मिला था।

साधारण-सी घटना है, किन्तु है बड़ी बोधक। सन् 1897 में इंग्लैण्ड की रानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक के साठ वर्ष पूर्ण होने जा रहे थे। उसके राज्यारोहण का हीरक-महोत्सव बहुत शान-शौकत से, ठाठ से मनाने का अंग्रेजी शासन ने तय किया। उस समय अपना हिन्दुस्थान देश गुलाम था - पराधीन था। अपने देश पर अंग्रेजों का शासन था। इस कारण अंग्रेजों ने आज्ञा प्रसारित की कि यह उत्सव रोब-दोब से मनाया जाए। तद्नुसार सरकारी भवनों पर रोशनी की गई। विद्यालयों में अंग्रेज महारानी के नाम पर उसका गौरव बढ़ाने

वाले भाषण हुए। बच्चों को मिठाई बांटी गई। केशव के विद्यायल में भी मिठाई बंटी। सब बच्चों ने मिठाई खाई लेकिन बालक केशव ने पेड़ा कूड़े में फेंक दिया। विदेशी राज्यकर्ताओं के समारोह की खुशी मनाना उसे पसन्द नहीं था। उस समय केशव की उम्र कितनी थी? पता है? केवल आठ वर्ष, किन्तु उस उम्र में भी उसके अन्त:करण में देशभक्ति की ज्योति सतत् जल रही थी। आगे के चार वर्षों के बाद पुनः यही अनुभव प्रकट हुआ।

सन् 1901 में जब बालक केशव केवल बारह वर्ष का था, रानी विक्टोरिया की मृत्यु के पश्चात् सप्तम एडवर्ड इंग्लैण्ड का राजा बना। इंग्लैण्ड का राजा यानी हिन्दुस्थान का सम्राट। उसका राज्यारोहण समारोह इंग्लैण्ड के समान हिन्दुस्थान में भी मनाया गया। नागपुर में 'एम्प्रेस मिल' नाम से कपड़ा बनाने का कारखाना था। आज भी है। कारखाने ने तय किया कि इस निमित्त से अपना कारखाना सजाया जाए और रात्रि में पटाखों, फुलझड़ियों आदि की आतिशबाजी से लोगों को प्रभावित किया जाए। बहुत बड़ी भीड़ यह आतिशबाजी देखने गई। विद्यालयों के बच्चों के लिए तो यह आकर्षक बढ़िया तमाशा था। बच्चे भी बहुत बड़ी संख्या में यह आतिशबाजी देखने गए लेकिन केशव नहीं गया। उसके मित्रों ने उससे साथ चलने का बहुत आग्रह किया। तब केशव ने कहा, 'विदेशी राजा का समारोह मनाना, यह लज्जाजनक है। मैं उसे देखने नहीं जाऊंगा।' इस छोटी उम्र में भी केशव का देशाभिमान कैसा प्रखर था।

प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् 'अंग्रेजी' अध्ययन के लिए केशव का नील सिटी हाईस्कूल में प्रवेश कराया गया। (वर्तमान में इस विद्यालय का नाम दादा साहब धनवटे विद्यायल है)। इसी विद्यायल से केशव हेडगेवार को निकाला गया था। क्यों? किस कारण? यह समझने के लिए उस समय की परिस्थिति हम देखें।

अपने देश में सन् 1905 का वर्ष बहुत उलट-पलट-धूम-धड़ाके का था। उस समय लार्ड कर्जन हिन्दुस्थान का वाइसराय था। वाइसराय यानी इंग्लैण्ड के राजा का हिन्दुस्थान में प्रतिनिधि यानी उसे राजा ही

कह लें। उसने बंगाल के प्रान्त के विभाजन का आदेश दिया। लोगों ने उस आदेश का तीव्र विरोध किया। यह विभाजन केवल बंगाल प्रान्त का होने पर भी सम्पूर्ण देश भड़क उठा। इसी समय 'वन्देमातरम्' की घोषणा ने लोगों का मन उद्दीप्त किया। स्वर्गीय बंकिमचन्द्र के 'आनन्दमठ' नाम के उपन्यास में यह 'वंदेमातरम्' एक गीत है। अपनी भारतमाता की उसमें प्रशंसा है। बंगाल विभाजन के समय यह गीत लोगों ने सुना, गाया और यह गीत उनके हृदय में गहराई से प्रवेश कर गया। 'वन्देमातरम्' यानी हे भारत माता, मैं तेरा वंदन करता हूं। इस घोषणा से भारत के करोड़ों लोगों के मन देशभक्ति की भावना से उद्वेलित हुए। अंग्रेजी शासन विरोधी क्रोध इस घोषणा द्वारा गांव-गांव में प्रकट होने लगा। तब अंग्रेजी सरकार ने 'वन्देमातरम्' नारे पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह नारा लगाने वाले को सजा होने लगी।

किन्तु लोगों के बढ़ते विरोध के कारण बंगाल का विभाजन अंग्रेजी शासन को आगे चलकर रद्द करना पड़ा। अपने देश का कितना दुर्भाग्य! केवल चालीस वर्षों के पश्चात् हम लोगों ने बंगाल-विभाजन मान लिया। चालीस वर्ष पूर्व विदेशी शासन की दृष्टि से बंगाल-विभाजन को रोकने का विरोध करना अपराध था। उस समय 'वन्देमातरम्' ने सम्पूर्ण देश में चैतन्य की लहर पैदा की। फिर नील सिटी हाईस्कूल के विद्यार्थी उससे कैसे अलग रहते। वे भी उत्साह से भर उठे। सन् 1908 - मैट्रिक के विद्यार्थी केशव हेडगेवार ने एक योजना बनाई। सरकारी इंस्पेक्टर विद्यालय का निरीक्षण करने आने वाला था। सब विद्यार्थियों ने तय किया कि इस निरीक्षण करने आने वाले का स्वागत 'वन्देमातरम्' के नारे से करेंगे। तद्नुसार मैट्रिक की कक्षा में मुख्याध्यापक और निरीक्षक के कदम रखे जाते ही 'वन्देमातरम्' का जयघोष शुरू हुआ। वे अन्य कक्षा में गए वहां भी वही जयघोष हुआ। विद्यालय का निरीक्षण रुक गया। निरीक्षक चला गया किन्तु जिस कक्षा में नारा लगाया गया, वहां पूछ-ताछ शुरू हुई। यह योजना किसने बनाई? इसका नेता कौन है? कोई भी नहीं बतला रहा था। अन्त में दोनो कक्षा के विद्यार्थियों को

विद्यालय से निकाल देने का निर्णय मुख्याध्यापक ने घोषित किया। विद्यालय के सब विद्यार्थियों ने इस निर्णय के विरोध में विद्यालय का बहिष्कार किया। अन्त में अभिभावकों और विद्यालय के अधिकारियों में समझौता हुआ। तय यह हुआ कि मुख्याध्यापक का हरेक विद्यार्थी से सिर्फ पूछना कि गलती हुई, और विद्यार्थी का गर्दन हिलाकर स्वीकार करना। ऐसा होने पर सजा दिए बिना विद्यार्थी को विद्यालय में आने देना। इस तरह प्रत्येक विद्यार्थी से पूछ कर उसे विद्यालय में पुनः लिया गया। लेकिन केशव हेडगेवार ने न ही गर्दन हिलाई और न ही हां की। इसलिए केवल केशव को ही विद्यालय से निकाल दिया गया।

उस समय यवतमाल (विदर्भ में जिला मुख्यालय) में श्री बापू जी अणे तथा तपस्वी बाबा साहब परांजपे के प्रयत्नों से 'विद्यागृह' नाम से एक राष्ट्रीय विद्यायल आरम्भ हुआ था। केशव हेडगेवार ने इस विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। किन्तु मैट्रिक परीक्षा के पूर्व ही अंग्रेज सरकार की टेढ़ी नजर उस विद्यायल की ओर गई और विद्यालय ही बन्द कर दिया गया। पुनः कठिनाई खड़ी हो गई किन्तु केशव के पैर नहीं डगमगाए। कुछ मित्रों के साथ वे पुणे गए। उसी समय कलकत्ता में कुछ देशभक्तों ने एक राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्थापना की थी। उस विद्यापीठ की मैट्रिक परीक्षा जुलाई मास में होने वाली थी। वह परीक्षा देने का निश्चय कर केशव हेडगेवार और उनके दो मित्रों ने गहरा अध्ययन किया। इस परीक्षा का केन्द्र अमरावती (विदर्भ) में था। वे सब अमरावती पहुंचे और परीक्षा दी।

इस तरह सन् 1909 में बीस वर्ष की उम्र पूर्ण हो जाने पर केशव हेडगेवार मैट्रिक में उत्तीर्ण हुए। उनके मैट्रिक के प्रमाण-पत्र पर किसके हस्ताक्षर थे? पता है? हस्ताक्षर थे रास बिहारी बोस के। वे ही रासबिहारी बोस, जो भारत की आजादी का आन्दोलन चलाने के लिए जापान गए और उन्होंने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को आजाद हिन्द फौज की स्थापना के लिए सब तरह की सहायता प्रदान की।

सार्वजनिक कार्य का अनुभव

उस समय कलकत्ता क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र था। केशवराव हेडगेवार का नागपुर में ही क्रान्तिकारियों से सम्पर्क हो गया था। वह क्रान्तिकारियों के विश्वस्त मण्डल के सदस्य थे। कलकत्ता में क्रान्तिकारियों की संस्था 'अनुशीलन समिति' नाम से सुविख्यात थी। केशव हेडगेवार के कलकत्ता पहुंचने पर स्वाभाविक रूप से अनुशीलन समिति में उनका प्रवेश हुआ।

केशव हेडगेवार ने डॉक्टर बनने के लिए कलकत्ता के नेशनल मेडिकल कालेज में प्रवेश लिया। उनकी डाक्टरी और क्रान्तिकारी – ऐसी दोहरी शिक्षा प्रारम्भ हुई।

सन् 1916 में केशव हेडगेवार, डॉक्टर केशवराव हेडगेवार बन कर नागपुर पहुंचे किन्तु उन्होंने डाक्टरी का व्यवसाय नहीं किया। गृहस्थी खड़ी नहीं की। कलकत्ता वे इसलिए नहीं गए थे क्योंकि उस समय यूरोप महाद्वीप में महायुद्ध चल रहा था। इंग्लैण्ड युद्ध में फंसा था। उसके इस संकट का लाभ उठाते हुए विप्लव का दावानल पैदा करने का क्रान्तिकारियों का विचार था किन्तु वह सफल नहीं हुआ। सन् 1918 में महायुद्ध समाप्त हुआ। इंग्लैण्ड विजयी हुआ। इंग्लैण्ड अधिक शक्तिशाली बना। उससे शस्त्रों की सहायता से लड़ना सम्भव नहीं रहा। यह भी स्पष्ट हुआ कि मुट्ठी भर लोगों के बलिदान से हिन्दुस्थान जैसे विशाल देश को आजाद कराना सम्भव नहीं। स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जनता में जागृति निर्माण करना आवश्यक है। कांग्रेस नाम से एकमेव राजनैतिक संस्था उस समय अस्तित्व में थी। उस संस्था का प्रारम्भ अंग्रेज सरकार से कुछ अधिकार प्राप्त करने

के लिए किया गया था। कांग्रेस के अधिवेशन में सर्वप्रथम अंग्रेजी सत्ता के लिए एकनिष्ठा का प्रस्ताव पारित करते हुए फिर अधिकार सम्बन्धी मांगों के प्रस्ताव पारित होते थे।

लेकिन लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस में अलग विचार चलाया। हमें केवल अधिकार ही नहीं स्वराज्य चाहिए, यह घोषणा उन्होंने की। 'स्वराज्य यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' उनकी इस घोषणा से कांग्रेस का वायुमंडल ही बदल गया और जनता में एक नवीन उत्साह का संचार हुआ किन्तु इसके साथ ही कांग्रेस में दो गुट बने। एक गुट था नरम दल तथा दूसरा था गरम दल। कांग्रेस में नरम दल वालों की संख्या अधिक थी। उनकी राजनीति अंग्रेज सरकार के अनुकूल थी किन्तु जनसाधारण का आकर्षण गरम दल की ओर था। लोकमान्य तिलक उनकी गरम राजनीति के कारण सच्चे अर्थ में, जनता में, लोगों में मान्य थे। उनकी जनप्रियता अंग्रेज सरकार को सहन नहीं हुई। समाचार-पत्र में लिखे लेखों को निमित्त बनाकर अंग्रेज सरकार ने उन पर मुकद्दमा चलाया और छह वर्ष के कारावास की सजा देकर उन्हें ब्रह्मदेश (म्यांमार) के माण्डले कारावास में भेज दिया। सन् 1914 में लोकमान्य तिलक की कारावास से रिहाई हुई। लेकिन इन छह वर्षों में गरम दल की राजनीति ठण्डी पड़ गई थी। लोकमान्य तिलक ने 'पुनश्च हरि ओम्' कहते हुए कार्य आरम्भ किया। उस समय उन्हें जो युवक वर्ग सहायतार्थ मिला, उसमें नागपुर प्रान्त के डॉक्टर हेडगेवार प्रमुख थे।

इस तरह डॉक्टर हेडगेवार कांग्रेस के नेता बने। डॉक्टर मुंजे, बैरिस्टर अभ्यंकर आदि का एक 'राष्ट्रीय मण्डल' नागपुर में था। डॉक्टर हेडगेवार भी इस राष्ट्रीय मण्डल में आ गए। इस मण्डल के सदस्यों में वे उम्र में सबसे छोटे थे। सन् 1920 के दिसम्बर मास में कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में कराने का निश्चय किया गया। डॉक्टर हेडगेवार के जिम्मे इस अधिवेशन की व्यवस्था का दायित्व था। नागपुर के राष्ट्रीय मण्डल की इच्छा थी कि लोकमान्य तिलक अध्यक्ष बनें। यह इच्छा पूर्ण भी हो जाती, किन्तु दुर्भाग्य से 1 अगस्त,

1920 के दिन लोकमान्य तिलक का निधन हो गया। अब कांग्रेस नेतृत्व के सूत्र महात्मा गांधी के पास आए। अंग्रेज सरकार से असहयोग और 'स्वदेशी' का ही उपयोग, इन दो कार्यक्रमों से सम्पूर्ण देश कांग्रेस की ओर आकर्षित हुआ। डॉक्टर जी ने भी इस कार्य में स्वयं को झोंक दिया।

जनमन में स्वराज्य की आकांक्षा उत्पन्न करने हेतु गांव-गांव प्रवास करते हुए वे भाषण करने लग गए। उनके भाषणों से अंग्रेज सरकार चिढ़ गई और उसने डॉक्टर जी पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। उन्हें एक वर्ष के कारावास की सजा हुई। 12 जुलाई, 1922 के दिन वे कारावास से मुक्त हुए।

अंग्रेजी सत्ता से असहयोग और स्वदेशी, महात्मा जी के इन कार्यक्रमों से डॉक्टर जी ने स्वयं को जोड़ लिया था, किन्तु मुसलमानों के सम्बन्ध में महात्मा जी की नीति डॉक्टर जी को मान्य नहीं थी। हिन्दुस्थान की आजादी के लिए हिन्दू-मुसलमान में एकता रहनी चाहिए, यह जब महात्मा जी ने आग्रह से प्रतिपादित करना आरम्भ किया, तब डॉक्टर जी ने प्रत्यक्ष महात्मा जी से भेंट करते हुए उनसे पूछा कि हिन्दुस्थान में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि अनेक धर्मों के लोग रहते हैं, तब आप केवल हिन्दू-मुसलमान एकता की बात क्यों करते हैं? हिन्दु-मुसलमान एकता शब्द प्रचार में आने से पूर्व से ही अनेक मुसलमान कांग्रेस में आते हुए स्वराज्य के लिए कार्य कर रहे हैं। महात्मा जी ने उत्तर दिया कि हिन्दू-मुसलमान एकता की बात करते हुए मैं मुसलमानों के मन में देश के लिए आत्मीयता और प्रेम निर्माण कर रहा हूं। डॉक्टर जी को यह उत्तर जंचा नहीं, फिर भी वे कांग्रेस में कार्य करते रहे।

सन् 1918 में महायुद्ध समाप्त हुआ। जर्मनी का साथ देने वाले तुर्की की पराजय हुई। तुर्की के कई टुकड़े हुए। तुर्की का सम्राट मुसलमानों का सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरु रहता था। उसे खलीफा कहते थे। सम्राट पद समाप्त होते ही खलीफा पद भी समाप्त हो गया। तुर्की

में नया राज्य बना। कमाल पाशा उस राज्य का प्रमुख बना। उसने खलीफा पद समाप्त कर दिया। इस कारण कट्टरपन्थी मुसलमानों ने अंग्रेजों और कमाल पाशा का विरोध करना आरम्भ किया। यहां तक सब ठीक था। किन्तु मुसलमानों को स्वराज्य-आन्दोलन में खींचने-सम्मिलित करने के विचार से महात्मा जी ने खलीफा पद की पुनः स्थापना के लिए सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में आन्दोलन चलाया। इसी को 'खिलाफत का आन्दोलन' कहा जाता है।

इस आन्दोलन की सफलता सम्भव ही नहीं थी। कारण तुर्की के मुसलमान स्वयं 'खलीफा' नहीं चाहते थे। यह आन्दोलन असफल होने से हिन्दुस्थान में उल्टा परिणाम हुआ। हिन्दुस्थान के मुसलमानों को दूसरे देश अधिक निकट लगने लगे। मुसलमानों की कट्टरता को खाद्-पानी मिला, इतना कि जब 'खिलाफत आन्दोलन' असफल हुआ, तब भारत के मुसलमानों ने बदले के रूप में उल्टे हिन्दुओं पर ही हमले चालू कर दिए। केरल का मोपला-विद्रोह इन हमलों का एक अति क्रूर अध्याय है। मोपलों के इस विद्रोह में मुसलमानों ने 1500 से अधिक हिन्दुओं की हत्या की और बीस हजार से अधिक को जबरदस्ती से धर्मान्तरित किया, मुसलमान बनाया। असंख्य महिलाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु कुओं में छलांग लगाकर प्राण विसर्जित किए।

संघ की स्थापना

मुसलमानों की चापलूसी करने की कांग्रेस की नीति के कटु फल देखकर डॉक्टर हेडगेवार जी के मन में एक नया विचार-चक्र प्रारम्भ हुआ।

देश आजाद होना ही चाहिए। क्रांतिकारियों के सुसूत्र रहित प्रयत्नों से स्वाधीनता प्राप्त नहीं होगी, यह बात उनके ध्यान में आई और उन्होंने स्वयं को उस कार्य से विरक्त कर लिया। कांग्रेस के मार्ग से जनसाधारण में आजादी के लिए जागृति हो रही थी। जागृति आवश्यक थी किन्तु उनके ध्यान में यह बात भी आई कि केवल जन जागृति पर्याप्त नहीं है। इस जन जागृति के आधार पर प्रत्यक्ष संघर्ष के लिए खड़ा संगठन जब तक नहीं दिखता, तब तक स्वतंत्रता युद्ध को परिणामकारी स्वरूप नहीं प्राप्त हो सकेगा। जाग्रत समाज सहानुभूति प्रकट कर सकता है, सहायता भी कर सकता है परन्तु युद्ध में विशिष्ट संख्या के लोगों को ही सामने के मोर्चो पर जाना पड़ता है, पूरी जनता मोर्चों पर नहीं जाती। यही बात आजादी की लड़ाई में भी है। कुछ लोग स्वातन्त्र्य प्राप्ति के ध्येय से एकत्रित होंगे, वे अनुशासन से रहेंगे, त्याग और मृत्यु से डरेंगे नहीं, ऐसे लोगों की सहायता के लिए सहानुभूतिपूर्ण समाज खड़ा रहेगा, ऐसी स्थिति निर्माण होने पर ही आजादी की लड़ाई सफल हो सकेगी।

समुद्र में हिमशैल रहता है। ऊपर से उसका केवल एक अष्टमांश भाग दिखता है। शेष सात अष्टमांश भाग पानी के अन्दर छिपा रहता है, लेकिन उस एक अष्टमांश भाग से बड़े जहाज के टकराने पर वह जहाज टूट कर नष्ट हो जाता है। इस एक अष्टमांश

भाग में इतनी ताकत क्यों रहती है? कारण, ऊपर दिखने वाला भाग पानी में छिपे सात अष्टमांश भाग से जुड़ा रहता है। कांग्रेस के प्रयत्नों से जन जागृति अवश्य हुई, लेकिन आजादी के आगे वाले मोर्चे पर गए वीर बहादुरों से समाज का नाता जुड़ा नहीं। वह नाता जोड़ने के लिए गांधी जी को समय नहीं मिला। इसलिए सन् 42 का आन्दोलन असफल हुआ। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की सेना सीमा पर पहुंची, उस समय सारा देश ठण्डा पड़ चुका था। देशव्यापी आन्दोलन का वह समय था, किन्तु आन्दोलन गरमाने वाले नेता कारागारों में बन्द थे और कारागारों से किस तरह मुक्त होंगे, इस असमंजस में थे। डॉक्टर हेडगेवार जी के मन में कौन से विचार चल रहे होंगे, यह समझने के लिए मैंने उनकी मृत्यु के पश्चात् का सन् 1942 का उदाहरण दिया।

डॉक्टर हेडगेवार जी के मन में और एक विचार बवण्डर मचा रहा था। मुट्ठी भर अंग्रेज इस देश में आए, उनका देश हमारे देश से हजारों मील दूर था और वे सेना साथ लेकर नहीं आए थे। केवल व्यापार के लिए तराजू लेकर आए और उन्होंने यह देश जीत लिया। कितना बड़ा आश्चर्य! उनको अपना यह देश किसने जीतकर दिया? डॉक्टर जी के ध्यान में आया – हम लोगों ने उन्हें यह देश जीत कर दिया। हम लोग ही उनकी सेना में सैनिक बने। हम ही अधिकारी और व्यवस्थापक बने।

डॉक्टर जी के सम्मुख जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ था। जलियांवाला बाग में दो हजार निःशस्त्र लोगों की अंग्रेज अधिकारियों के आदेश से गोलियां चलाकर हत्या की गई थी। जलियांवाला बाग पंजाब के अमृतसर नगर में एक बड़ा मैदान है। उसके चारों और दीवारें हैं। प्रवेशद्वार केवल एक, और वह भी बहुत संकरा। अंग्रेज सरकार का निषेध करने यहां एक बहुत बड़ी सभा हुई थी। यह सभा नष्ट करने का निश्चय अंग्रेज सरकार ने किया। जब सभा के लिए लोग एकत्रित हुए और भाषण शुरू हुआ, तब अंग्रेज अधिकारी ने गोली चलाने का आदेश दिया। इस गोलीकाण्ड में हजारों लोग मारे

गए। जो लोग जानवर के समान दो हाथ और दो पैरों से रेंगते हुए-चलते गए, वे ही बच सके।

उन पर गोलियां किसने चलाईं? अपने ही लोगों ने। आदेश देने वाला अधिकारी अंग्रेज था किन्तु बन्दूक चलाने वाले अपने ही लोग थे। मारने वाले भी हम लोग और मरने वाले भी हम ही लोग। अरब से, ईराक से, अफगानिस्तान से जो विधर्मी आक्रमणकारी आए, उनके भी सैनिक और सरदार कौन थे? हम ही लोग। महमूद गजनवी को मार्ग बताने वाले अपने ही लोग थे। मानसिंह अकबर का सेनापति था और 'मिर्ज़ा' राजा जयसिंह औरंगजेब का सेनापति था। शिवाजी के पिता शाहजी पहले निजामशाह के दरबार में और बाद में आदिलशाह के दरबार में उच्च श्रेणी के सरदार थे। ये सब बड़ी बहादुर मण्डली थी। फिर ऐसा व्यवहार इन सबका क्यों था? समाज के नेता कहलाने वाले लोगों की जब यह स्थिति हो, तब सामान्य लोगों का क्या हाल होगा?

इस तरह का विचार-चक्र कई दिन तक डॉक्टर जी के मन में घूम रहा था। उन्हें अस्वस्थ कर रहा था और फिर उनके मन का निश्चय हुआ। उन्होंने तय किया कि समाज संगठित होना आवश्यक है। जिन्हें इस देश के लिए प्रेम और आत्मीयता है, प्रथम ऐसे कुछ लोगों का संगठन होना चाहिए। हम लोग कौन हैं, हमारे मित्र कौन, शत्रु कौन, इसका ज्ञान होना चाहिए तथा सतत् यह ध्यान में भी रहना चाहिए। संगठन का अर्थ एकत्रीकरण नहीं, केवल भीड़ नहीं। वैसा एकत्रीकरण तो मेले में भी होता है। बाजार में बहुत लोग एकत्रित होते हैं, वह संगठन नहीं है। संगठन यानी विशिष्ट विचार तथा आचरण से संस्कारित लोगों का एकत्रीकरण। ऐसे संस्कार कौन दे सकता है?

सामान्यत: दो स्थानों पर स्वाभाविक संस्कार होते हैं। एक घर और दूसरा स्थान विद्यालय। घर में संस्कार होते थे किन्तु वे केवल घर के लिए। उन संस्कारों को सामाजिक आयाम नहीं मिला था। राष्ट्रीय दृष्टि नहीं थी। विद्यालय में केवल जानकारी दी जाती थी,

परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए। आज भी स्थिति वैसी ही है। इसलिए डॉक्टर जी को एक अलग ही पद्धति अपनानी पड़ी। उनके इस विचार-मन्थन से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई तथा संघ की कार्य पद्धति भी निश्चित हुई। यह कार्य निश्चित होते ही उन्होंने स्वयं को शेष सब सार्वजनिक कार्यों से अलग किया। वे कांग्रेस में पदाधिकारी थे। वहीं रहते, तो और भी अधिक उच्च पद पर पहुंचते किन्तु वह मोह उन्होंने छोड़ा। साथ किन्हें लें? उन्होंने तय किया कि जिसके मन की पाटी (तख्ती) कोरी है, अछूती है, उसी पर हम कुछ लिख सकते हैं। इसलिए उन्होंनें 10-12 वर्ष की उम्र के छोटे बच्चे एकत्रित किए। उस समय डॉक्टर जी की उम्र 36 वर्ष की थी। लोगों ने कहा - यह पागलपन है। कारण, उन्होनें नाम-लौकिकता की ओर से मुंह फेर लिया था और छोटे बच्चों के साथ खेलने, बैठने, उनसे वार्तालाप करने में स्वयं को समा लिया था। अपना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस तरह प्रारम्भ हुआ।

संघ का नाम

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ', यह नाम गहन विचार के पश्चात् निश्चित किया गया। इस नाम में प्रत्येक शब्द महत्व का है। इसका अर्थ हमें समझ लेना चाहिए। प्रथम 'संघ', यह शब्द देखें। संघ अर्थात् अनेक लोग। अकेले का कभी संघ नहीं होता। अपना हिन्दू समाज संख्या से इतना बड़ा होने पर भी हर एक को लगता था कि मैं अकेला हूं। डॉक्टर हेडगेवार जी के जीवन की एक घटना बहुत कुछ बतलाती है। यह घटना संघ स्थापना के पूर्व की है। उस समय डॉक्टर जी कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। अंग्रेज सरकार का विरोध करने के लिए गांव-गांव में जन-सभाओं का आयोजन था। उन सभाओं में सरकार के विरोध का प्रस्ताव पारित कराना था। इन सभाओं के निमित्त डॉक्टर जी चन्द्रपुर गए थे।

नागपुर में भी सभा का आयोजन था। यह सभा नागपुर के टाउन हाल के मैदान में थी। मैदान लोगों से खचाखच भरा था। वक्ताओं के जोरदार भाषण हुए और विरोध प्रस्ताव का पढ़ना शुरू हुआ। तभी कोई चिल्लाया 'सांप रे सांप' और लोगों ने भागना शुरू किया। उन्हें भागते देख शेष लोग भी मानो 'अपने ही पीछे सांप है' इस कल्पना से जान बचाकर भागने लगे। उस समय के 'दैनिक महाराष्ट्र' समाचार पत्र में इस भागदौड़ का रसभरा वर्णन प्रकाशित हुआ। हम क्यों भाग रहे हैं, यह जानकारी साधारण लोगों को नहीं थी। सब भाग रहे हैं, इसलिए वे भी भाग रहे थे।

डॉक्टर जी चन्द्रपुर से लौटने पर अनेक नेताओं के पास गए और उनसे सभा का वृत पूछने लगे। हरेक यही बतलाने लगा कि

सभा विशाल थी, भाषण जोरदार हुए किन्तु किसी शरारती ने रबड़ का खिलौना सांप फेंककर 'सांप रे सांप' की चिल्लाहट के साथ भागना शुरू किया और सारी सभा भाग खड़ी हुई। डॉक्टर जी ने पूछा, 'आप तो वहीं थे। आपने लोगों को रोका क्यों नहीं?' एक ने कहा, 'मैं अकेला क्या कर सकता था?' बहुतों ने यही उत्तर दिया। सभा में इतने लोग रहने पर भी हर एक को लगता था कि 'मैं अकेला हूं।' डॉक्टर जी ने यह तय किया कि हिन्दू समाज की यह अकेलेपन की भावना हटानी है। इसलिए संघ आरम्भ हुआ। हर रोज, अपने संगठन का नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है, ऐसा कोई नहीं बतलाता। 'संघ' यह छोटा नाम है। सबकी बातचीत में है। 'आप कहां जा रहे हैं?' का उत्तर है 'संघ में'। 'आज संघ का कार्यक्रम है', 'यह संघ की शाखा है', 'यह संघ स्थान है', बस 'संघ' महत्व का है यानी अनेक रहने पर भी हम सब एक हैं, यह भावना महत्व की है।

लेकिन संघ अर्थात् केवल एकत्रीकरण नहीं। संस्कारयुक्त लोगों का एकत्रीकरण यानी संघ। संघ के ये संस्कार कौन से हैं? पहला संस्कार यह है कि हम भारत माता के पुत्र हिन्दू हैं और सब एक हैं, यह बात मन-हृदय में पक्की तरह से बैठाना। हिन्दुओं में अनेक जातियां हैं, अनेक भाषाएं हैं। खान-पान अलग-अलग प्रकार का है तथा यह विशिष्ट जाति श्रेष्ठ और वह कनिष्ठ, ऐसी भावना है। इसके अलावा बुराई का अतिरेक है कि कुछ जातियां अस्पृश्य हैं यानी उन्हें छूना नहीं, स्पर्श हुआ तो छूने वाला अशुद्ध हो गया ऐसा बर्ताव। ऐसे समाज में संघ खड़ा करना मेंढकों को तोलने जैसा कठिन था। किन्तु डॉक्टर जी ने यह कठिन कार्य करने का संकल्प किया। सबके लिए एक आसान मन्त्र दिया, 'एकशः सम्पत्' यानी एक पंक्ति में खड़े रहो।

उच्च जाति के हों या निम्न जाति के, पहले को अपना अहंकार छोड़कर और दूसरे को अपनी लाचारी या हीनता छोड़कर एक पंक्ति में खड़े रहना। कोई रईस होंगे, तो अपनी रईसी का अहंकार छोड़कर और दरिद्र होंगे तो अपनी दीनता भूलकर एक पंक्ति में खड़े रहना,

कोई विद्वान् पण्डित होंगे, तो अपनी विद्वत्ता एक तरफ रखकर तथा कोई अनाड़ी होंगे, तो अपना अज्ञान भूलकर एक पंक्ति में खड़े रहना। आप हिन्दू हैं, तो फिर एक पंक्ति में खड़े रहो। डॉक्टर जी ने 'एकशः सम्पत्' का मन्त्र दिया। सब तरह की जातियों के लोगों को, अनेक भाषा-भाषियों को, अनेक प्रान्तों के लोगों को, अलग-अलग वेशभूषा वालों को एक पंक्ति में खड़ा किया।

फिर वे सब एक पंक्ति में बैठने लगे, एक पंक्ति में चलने लगे, एक पंक्ति में भोजन करने लगे। यह बड़ा चमत्कार ही था। वह डॉक्टर जी ने संघ द्वारा प्रकट किया। डॉक्टर जी ने जाति-पाति के विरोधी गरमागरम ऊटपटांग भाषण नहीं दिए। 'हम अस्पृश्यता मिटाने वाले हैं' यह नारा भी नहीं लगाया। सबसे एक ही बात कही कि हम सब हिन्दू हैं तथा हिन्दुओं को हम किस तरह एक हैं यह अनुभूति, बिल्कुल अनजाने में अनुभूति हो, इसलिए दैनिक शाखा आरम्भ की। सबने प्रतिदिन एकत्रित आना, एक पंक्ति में खड़े रहना, एकत्रित खेलना, कभी पर्यटन करना, शिविर हो, तो सब की रसोई एक ही, वहां भी एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना, स्वयंसेवक ही परोसने वाले, कोई किसी की जाति नहीं पूछेगा, मालूम रहने पर भी उस बात की चर्चा नहीं। सभी स्वयंसेवक, संघ के स्वयंसेवक और संघ स्वयंसेवकों का यह पहला अति महत्व का संस्कार संघ-पद्धति ने दिया।

शाखा दैनिक रहती है। बहुत लोग कहते रहते हैं - 'हम देश के लिए यह करेंगे, वह करेंगे।' संघ के उस आरम्भकाल में भी कहते थे। डॉक्टर जी ने बतलाया, 'दिन के चौबीस घन्टे रहते हैं। उनमें से 23 घण्टे आपके। देश के लिए एक घण्टा तो दो। समाज के लिए दो, यानी संघ के लिए दो। यानी जीवन की ऐसी रचना करो कि उस घण्टे में मैं स्वयं का विचार नहीं करूंगा, अपनी नौकरी का, अपने काम-धन्धे का विचार नहीं करूंगा। संघ का विचार करूंगा। संघ, यह व्रत समझो। क्लब में और संघ में अन्तर है। फुरसत के समय पहुंचने का स्थान यानी क्लब और समय निकाल कर जाने का काम यानी संघ की शाखा। अपने सब निजी कार्यक्रमों की ऐसी

योजना-रचना बनाना की संघ के लिए कम से कम एक घण्टा खुला मिले। इससे जीवन को एक अलग ही संस्कार मिला। मैं केवल अपने लिए नहीं, समाज के लिए भी हूं, यह वह संस्कार है। हिन्दू समाज में इसी सामाजिक भावना का अभाव था। संघ ने वह अभाव दूर किया। हम हिन्दू लोग बहुत अधिक व्यक्तिनिष्ठ हैं, बहुत बढ़े तो परिवारनिष्ठ। संघ ने स्वयंसेवकों को समाजनिष्ठ बनाया। समाजनिष्ठा का व्रत लेने वाले लोगों का एकत्रीकरण यानी संघ। इसलिए अपने यहां कहा जाता है कि संघ यह संस्कार देने वाला विद्यालय है। कौन से संस्कार? हिन्दू समाज की एकता के, सामाजिक जीवन जीने के तथा अपने समाज के प्रति मेरा कर्तव्य है, यह ध्यान में रखते हुए जीवन चलाने के संस्कार। 'संघ' इस शब्द का इतना व्यापक अर्थ है।'

स्वयंसेवक

दूसरा महत्व का शब्द है स्वयंसेवक। धन या वेतन लेकर काम करने वाले स्वयं को 'सेवक' (नौकर) समझते हैं। लेकिन संघ का कार्यकर्त्ता यह स्वयंसेवक है अर्थात् वह संघ के यानी समाज के किसी भी कार्य के लिए बदले में कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं रखता। संघ कार्य है अपनी मातृभूमि की सेवा का कार्य। हम लोग अपनी माता की सेवा करते हैं, तब बदले में हमें कुछ मिलेगा, क्या ऐसी अपेक्षा रखते हैं? बदले में कुछ मिलने की अपेक्षा रखते हुए जो कार्य किया जाता है, वह सेवा कैसी? वह तो सौदा हुआ। डॉक्टर जी ने कहा, 'हम सब अपनी मातृभूमि के स्वयंसेवक हैं, अर्थात् बदले में कुछ मिलेगा, ऐसी आशा या अपेक्षा न रखने वाले हम लोग हैं। इसलिए संघ में वेतन नहीं है, मानधन भी नहीं है।'

डॉक्टर जी के समय 'स्वयंसेवक' शब्द का अलग ही अर्थ था। सभा स्थान पर दरियां बिछाने वाला, कुर्सियां लगाने वाला, नेताओं के लिए सुविधा-व्यवस्था करने वाला, इसकी जय - उसकी जय के नारे लगाते हुए जुलूस में चलने वाला, सीने पर बिल्ला (बैज) लगाते हुए व्यवस्था देखने वाला ऐसा अर्थ 'स्वयंसेवक' शब्द का था। अंग्रेजी भाषा का 'वालण्टियर' यह शब्द अधिक प्रचलित था। उसी का अपनी भाषा में अनुवाद है स्वयंसेवक शब्द, ऐसा समझा जाता था। डॉक्टर जी ने इस शब्द का अर्थ बदल डाला। स्वयंसेवक यानी देशभक्त नागरिक, ऐसी प्रतिष्ठा उस शब्द को प्राप्त करा दी। संघ का यह कार्य है, वह कौन करेगा? अर्थात् स्वयंसेवक करेगा। संघ कार्य के लिए धन की आवश्यकता है, वह कौन देगा? अर्थात्

स्वयंसेवक। किस भावना से देगा? चन्दे की भावना से या दान की भावना से? नहीं। दक्षिणा की भावना से देगा यानी त्याग की भावना से। दक्षिणा का अर्थ है श्रद्धा से अर्पित किया हुआ धन। उसका मूल्य अंकों में नहीं गिना जाता।

दक्षिणा किसे देना है? अर्थात् गुरु को। हमारा गुरु कौन है? डॉक्टर जी ने बतलाया कि भगवा ध्वज अपना गुरु। अपना गुरु कोई व्यक्ति नहीं है। अपना गुरु भगवा ध्वज है। वह त्याग का प्रतीक है, वह पवित्रता का चिन्ह है, वह पराक्रम की निशानी है। उसके भगवा रंग में पवित्रता और पराक्रम समाया हुआ है। उसके यानी गुरु के सम्मुख हमको अपनी दक्षिणा अर्पित करनी है। गुरुदक्षिणा देने वाला दाता नहीं कहा जाता। समर्पण करने वाला वह स्वयंसेवक रहता है। इसलिए दक्षिणा किसने अधिक दी, इसका कोई बड़प्पन नहीं, किसी ने कम दक्षिणा दी, उसकी अवहेलना नहीं। संघ में इस तरह से गुरुदक्षिणा की पद्धति प्रारम्भ हुई। संघ में किसी भी व्यक्ति की प्रशंसा के पुल नहीं बांधे जाते। संघ डॉक्टर जी ने आरम्भ किया। छोटे-छोटे बच्चों को एकत्र कर संघ शुरू हुआ। संघ की पद्धति, संघ के कार्यक्रम, सब उन्होंने निश्चित किए। उन्होंने स्वयंसवकों से यदि कहा होता कि 'डॉक्टर हेडगेवार की जय' कहो, तब सबने अत्यन्त श्रद्धा और उत्साह से 'डॉक्टर हेडगेवार की जय' का गगनभेदी उद्घोष किया होता, किन्तु संघ में 'डॉक्टर हेडगेवार की जय' नहीं है। जय है केवल भारत माता की। यहां सब स्वयंसेवक हैं। कोई अधिकारी है केवल व्यवस्था के रूप में। मूलरूप से सब स्वयंसेवक ही हैं। इसलिए संघ में अधिकारी का जय-जयकार नहीं है। स्वयंसेवक का यह अर्थ है।

संघ को कार्यकर्त्ता चाहिए। विभिन्न गांवों में, प्रान्तों में जाकर वहां संघ प्रारम्भ करना है। यह काम कौन करेगा? स्वयंसेवक। स्वयंसेवक ने इस चुनौती को स्वीकार किया है। कोई शिक्षा प्राप्त करने बाहर गया; किन्तु योजना से। कोई शिक्षा पूर्ण कर बाहर गया। उसने अपना सारा जीवन संघ को अर्पित किया। इस तरह प्रचारकों

की मालिका तैयार हुई। वे अपरिचित प्रान्तों में गए। वहां की भाषा सीखी और वहां संघ शाखा आरम्भ की। संघ की आवश्यकता धन की हो या कार्यकर्त्ता की हो, वह स्वयंसेवकों द्वारा ही पूर्ण करने के कारण संघ पर किसी का भी नियंत्रण नहीं है। संघ पूर्णरूपेण स्वायत्त और स्वतन्त्र है। संघ का सबसे बड़ा बलस्थान 'स्वयंसेवक' ही है। उसी के भरोसे संघ बढ़ा है। किसी भी सरकार की कृपा से नहीं। सरकार ने तो हमेशा विरोध ही किया है। संघ को नष्ट करने के लिए सरकार ने अनेक बार षड्यन्त्र रचे; परन्तु अग्नि में से सुवर्ण जैसे अधिक चमकते हुए बाहर निकलता है, वैसे ही संघ उन संकटों में से और अधिक दीप्तिमान होकर कुन्दन बनकर बाहर निकला। इसका कारण उसके स्वयंसेवक हैं। स्वयंसेवक इस शब्द का अर्थ ऐसा महान् है।

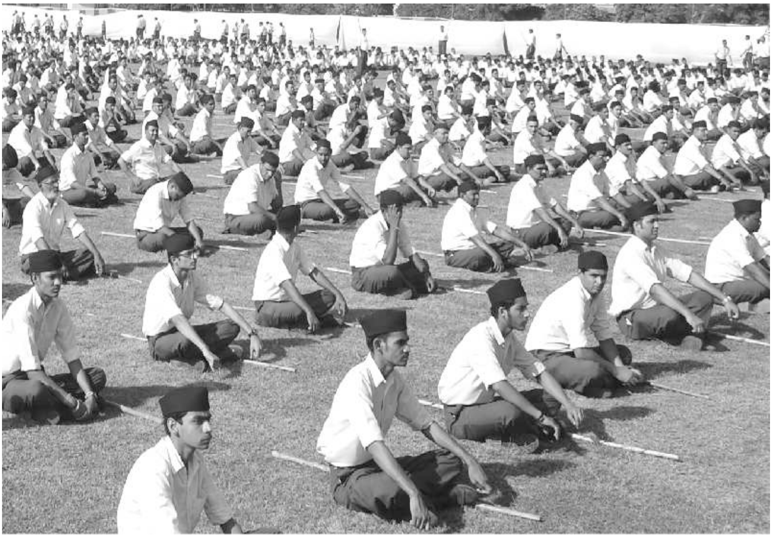

राष्ट्रीय अर्थात् क्या?

तीसरा शब्द है राष्ट्रीय। वास्तव में संघ के नाम में यह पहला शब्द है। इसलिए यह सबसे अधिक महत्व का है। संगठन करना, संस्कार करना, बिना स्वार्थ के कार्य करना, किन्तु किस लिए? उत्तर है राष्ट्र के लिए। लेकिन राष्ट्र अर्थात् क्या? कुछ लोग कहते हैं राष्ट्र अर्थात् देश। उनका यह कहना गलत नहीं है, किन्तु यह उत्तर अपूर्ण है। कुछ लोग कहते हैं राष्ट्र यानी राज्य। लेकिन यह उत्तर भी सही नहीं है। राष्ट्र यानी लोग होते हैं। लोग किसी न किसी भौगोलिक सीमाओं में ही रहेंगे। अतः राष्ट्र का देश से सम्बन्ध रहता है, जैसे मछली का पानी से। तथापि पानी अलग है, मछली अलग है। राज्य यह एक राजकीय व्यवस्था है। वह बदलती रहती है। कभी तानाशाही राज्य रहता है, कभी प्रजातन्त्रीय राज्य रहता है, तो कभी राजतन्त्र रहता है। राज्य का स्वरूप बदलता रहता है, किन्तु उसके साथ राष्ट्र का स्वरूप नहीं बदलता।

तब 'राष्ट्र' यानी लोग। किन लोगों का राष्ट्र बनता है? उसके लिए तीन शर्तें हैं। पहली शर्त है कि जिस भूभाग में लोग रहते हैं, उसके सम्बन्ध में लोगों को क्या लगता है? वे उस देश को 'मातृभूमि' मानते हैं या 'भोगभूमि' मानते हैं? मानव के जीवन में माता का स्थान कितना श्रेष्ठ रहता है! कितना पवित्र रहता है! किसी को हमने माता माना कि उसकी ओर हमारी भावनाओं का विश्व ही अलग हो जाता है। माता की पवित्रता और महत्ता का अनुभव करना मानव की विशेषता है। जानवर माता का रिश्ता समझ ही नहीं सकता। वैसे देश और भूमि तो निर्जीव रहती है। कंकड़-पत्थरों की

रहती है। किन्तु उसे माता कहने पर वह सजीव बनती है, वन्दनीय बनती है। वह मातृभूमि बन जाती है। कवि बंकिमचन्द्र कहते हैं, 'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी' तू दस शस्त्र धारण करने वाली दुर्गा है। 'कमला कमलदल विहारिणी' तू प्रत्यक्ष लक्ष्मी है। 'वाणी विद्यादायिनी' विद्या देने वाली तू सरस्वती है। 'वन्देमातरम्' मां, मैं तुझे वन्दन करता हूं। जिन्हें अपनी मातृभूमि को वन्दन करने में प्रसन्नता और गर्व का अनुभव होता है, उन लोगों का राष्ट्र बनता है। यह पहली शर्त।

अब दूसरी शर्त देखें। लोग किसी प्रदेश में अनेक वर्षों से रहते चले आ रहे होते हैं। उनका एक इतिहास बनता है। इस इतिहास में अनेक घटनाएं होती हैं। कुछ आनन्द देने वाली रहती हैं, कुछ दु:ख देने वाली। इन घटनाओं को पढ़ते समय, सुनते समय या चित्रों में देखते समय जिनके मन में समान प्रकार की भावनाओं का उदय होता है - फिर वह भावनाएं आनन्द की हों या दु:ख की - उनका राष्ट्र बनता है। शिवाजी महाराज की जय हुई तो हमें खुशी होती है। क्यों? हमें शिवाजी ने क्या दिया? राणा प्रताप की पराजय हुई, उन्हें जंगल-जंगल में घूमना पड़ा। इसका हमें दु:ख होता है। क्यों? हमें तो जंगलों में घूमना नहीं पड़ा। इसका हमें दु:ख होता है। क्यों? हमें तो जंगलों में घूमना नहीं पड़ा। गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों को दीवार में चुनकर मार डाला। हमारी आंखों में यह घटना सुनकर आंसू आ जाते हैं। क्यों? हमारा उन बच्चों से कौन सा सम्बन्ध है? लड़ाई में झांसी की रानी पराजित होती है, हम दु:खी हो जाते हैं। चाफेकर बन्धु रैण्ड का वध करते हैं, हमें खुशी होती है। इतिहास की इन या ऐसी घटनाओं को सुनकर-पढ़कर या जानकर जिनके मन में समान भावनाएं निर्माण होती हैं, उनका राष्ट्र बनता है। इसी को कहते हैं जिनका समान इतिहास है, उनका राष्ट्र बनता है।

एक तीसरी शर्त भी है। वह सबसे महत्व की है। अच्छा और बुरा तय करने के जिनके समान मापदण्ड होते हैं, उनका राष्ट्र बनता है। इन्हीं मापदण्डों को संस्कृति कहते हैं। रावण बुरा, राम अच्छा, कंस बुरा, कृष्ण अच्छा। कौरव बुरे, पाण्डव अच्छे। यह सब समझते

हैं। इसलिए कोई अपने पुत्र का नाम रावण या कंस नहीं रखता। दूसरों की पत्नी को भगा ले जाना बुरा, स्वार्थ के लिए अपने पिता को कारागार में डालना बुरा, कबूल किया हुआ राज्य न देना, प्रत्यक्ष अपनी भावज को विवस्त्र करने का प्रयत्न करना यह बुरा। अपनी सौतेली माता के कहने से राज्याभिषेक समारोह छोड़कर, प्रसन्नता से वन में जाने को स्वीकार करने वाला राम अच्छा, दुष्टों का संहार करने वाला कृष्ण हमारा आदर्श। लोगों का दु:ख देखकर राजमहल छोड़ते हुए सुख की खोज के लिए निकलने वाले गौतम बुद्ध हमारे लिए वन्दनीय। शत्रु की सुन्दर स्त्री पकड़कर ला देने पर उस स्त्री का सम्मान करते हुए उसे सुरक्षित ससुराल भेजने वाले शिवाजी महाराज हमारे आदर्श। ये आदर्श क्यों? उन्होंने अपनी संस्कृति प्रत्यक्ष आचरण में प्रकट की, इसलिए। जिनकी संस्कृति एक रहती है, जो जाति-पाति का, पन्थ-सम्प्रदाय का विचार न करते हुए अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहते हैं, उनका राष्ट्र बनता है।

संक्षिप्त में जिन्हें अपना यह देश, अपनी मातृभूमि लगती है, जिन्हें देश का इतिहास अपना इतिहास लगता है और जिन्हें अपने इतिहास का गर्व रहता है, उनका राष्ट्र बनता है। ऐसे वे कौन लोग हैं जिन्हें 'वन्देमातरम्' कहने में गर्व अनुभव होता है, इतिहास अपना लगता है, संस्कृति अपनी लगती है? अर्थात् इन लोगों का नाम हिन्दू है, इसलिए यह हिन्दू राष्ट्र है। अर्थात् 'राष्ट्रीय' इस शब्द का अर्थ हुआ हिन्दू। अपना संगठन, अपने संस्कार, अपने सब कार्य, अपना त्याग, अपना परिश्रम राष्ट्र के लिए है, यानी हिन्दुओं के लिए है।

इससे हिन्दू कौन, इसका अर्थ स्पष्ट हुआ। जो इस देश को अपनी मातृभूमि मानता है और यहां की संस्कृति अपनी संस्कृति मानता है, वह है हिन्दू। वह मूर्ति-पूजा करे या न करे, वह वेद को माने या न माने, वह राम और कृष्ण को अवतार माने या न माने, वह कोई भी भाषा बोले, वह हिन्दू हो सकता है। इसलिए जैन, बौद्ध, सिक्ख, आर्यसमाजी, लिंगायत आदि सब हैं हिन्दू ही। जैसे मूर्ति-पूजा को मानने वाले हिन्दू, वैसे ही मूर्ति-पूजा में जिनका

विश्वास नहीं वे आर्यसमाजी भी हिन्दू। यहां मूर्ति पूजा करने का आग्रह नहीं है, किन्तु जिन्हें मूर्ति पूजा करनी है, उन्हें वह करते रहना चाहिए। हमें मूर्ति पूजा मान्य नहीं है इसलिए हम मूर्ति तोड़ेंगे, मन्दिर गिरायेंगे, ऐसा कहने वाले और इस पर गर्व करने वाले हिन्दू हो ही नहीं सकते। इसलिए वह राष्ट्रीय भी नहीं हो सकते। मुसलमान और ईसाई जब तक यह तत्व मान्य नहीं करते और मन्दिर गिराने वालों को, हिन्दुओं को धर्मान्तरित करने वालों को अपना आदर्श मानकर उनका गौरव करते हैं, तब तक वे राष्ट्रीय नहीं माने जा सकते। उन्हें राष्ट्रीय बनने के लिए स्वयं में परिवर्तन करना पड़ेगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का यह अर्थ है। यह अर्थ ध्यान में आने पर संघ का कार्य भी समझ में आयेगा और संघ हिन्दुओं का ही संगठन क्यों करता है, इसका जवाब भी मिलेगा।

हिन्दुओं का ही संगठन क्यों? इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान है। कारण इस देश का भाग्य और भविष्य हिन्दुओं से ही जुड़ा है। 'हिन्दू' यह नाम है राष्ट्र का। वह राष्ट्र का रूप है, वह राष्ट्र का प्राण है। इसलिए हिन्दुओं की दुर्बलता यानी राष्ट्र की दुर्बलता। हिन्दुओं की शक्ति यानी राष्ट्र की शक्ति होती है। हिन्दू किसी हिस्से में अल्पसंख्यक बना, तो अपनी मातृभूमि का वह हिस्सा अपने से हटने का, कटने का खतरा पैदा होता है। 1947 में अपने देश का विभाजन होकर पाकिस्तान बना। क्यों बना यह पाकिस्तान?

राजनीति के पण्डित अनेक कारण बतायेंगे, किन्तु मूलभूत कारण है कि उस भाग में, उस हिस्से में हिन्दू अल्पसंख्यक हुआ था। अफगानिस्तान भी प्राचीनकाल में अपने देश का ही हिस्सा था। वह भी अपने से कटा। कारण, वहां हिन्दू अल्पसंख्यक बना। आज हम कहते हैं कश्मीर समस्या। आज समस्या जम्मू-कश्मीर की उस भाग की है, जहां हिन्दुओं की संख्या केवल पांच प्रतिशत है। अब तो उनती भी नहीं रही। नागालैण्ड, मिजोरम में विद्रोही आतंकावाद का कारण है, वहां हिन्दू अल्पसंख्यक बन गया। हिन्दू संगठित होने

पर राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। फिर उस स्थान पर टूट-फूट विद्रोह नहीं फैलता, दंगा-फसाद नहीं होते। सब ओर शान्ति रहती है। जो हिन्दू नहीं हैं, वे भी आराम से शान्ति से रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि संघ हिन्दुओं का ही संगठन क्यों करता है।

हिन्दू यानी कौन? यह इससे पूर्व स्पष्ट किया ही है। इस कारण हिन्दुओं का संगठन यह राष्ट्रीय संगठन है। उसमें साम्प्रदायिकता नहीं है। कारण, हिन्दू यह सम्प्रदाय नहीं है। अनेक सम्प्रदायों को अपने में समाहित करने वाला हिन्दू है। यह सब जाति विरादरियों को साथ लेकर बना हुआ संगठन है।

आन्ध्रप्रदेश में बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए
सामग्री ले जाते हुए स्वयंसेवक

2014 में पुणे के मालिन गांव में हुए भूस्खलन में मारे
गए लोगों का अंतिम संस्कार करते हुए स्वयंसेवक

संघ के कार्यक्रम

दैनिक शाखा संघ का सबसे अधिक महत्व का कार्यक्रम है। सुबह या शाम या रात्रि में कभी भी शाखा लगाई जा सकती है; किन्तु वह निश्चित समय पर प्रतिदिन लगनी चाहिए। प्रतिदिन भगवा ध्वज शाखा में लगाया जाना चाहिए। ध्वज प्रणाम करके ही शाखा प्रारम्भ होनी चाहिए तथा प्रार्थना करके ही शाखा विसर्जित होनी चाहिए।

शाखा एक घण्टे की रहती है। वह ठीक समय पर आरम्भ कर ठीक समय पर समाप्त होनी चाहिए। इससे सबको समय पर सब काम करने की आदत पड़ती है। पूर्व अध्यायों में बतलाया गया है कि अपने प्रतिदिन के चौबीस घण्टों में से कम से कम एक घण्टा हमें अपने देश के लिए, अपने समाज के लिए, अपने राष्ट्र के लिए देना चाहिए। तभी हम राष्ट्र समर्पित, समाजपरक और देशभक्ति से युक्त जीवन सहजता से जी सकेंगे। इस प्रकार का जीवन जीने का संस्कार हमारे मन पर दैनिक शाखा से पड़ता है। प्रतिदिन की आदत पड़ने से अपना पूरा जीवन ही बदल जाता है।

अपने धर्म में कहा गया है कि मृत्यु के समय राम नाम का स्मरण करने से मोक्ष मिलता है, लेकिन मृत्यु के समय मुख में राम नाम कैसे आयेगा? उसके लिए प्रतिदिन राम नाम लेने की आदत डालनी आवश्यक है। एक बार एक रईस व्यापारी बीमार हुआ। उसका मृत्यु समय निकट आया। उसे जमीन पर बिछाये गए कम्बल पर लिटाया गया। उसने क्षीण आवाज से पूछा, 'रामलाल कहां है?' उसके पुत्र रामलाल ने कहा, पिताजी, 'मैं यहीं हूं।' फिर उसने पूछा,

'श्याम लाल कहां है?' दूसरे पुत्र श्याम लाल ने कहा, 'पिताजी, मैं भी यहीं हूं।' तब उस बूढ़े ने पूछा, 'तुम दोनों यहां हो फिर दुकान में कौन है?' मृत्यु के अन्तिम समय में भी हमें यदि दुकान ही याद आयेगी तो मौक्ष कैसे मिलेगा? उस समय भी राम याद नहीं आता। कारण प्रतिदिन राम नाम लेने की आदत नहीं होती।

दैनिक शाखा स्वयं को, स्वार्थ को भुलाकर प्रतिदिन समाज का स्मरण कराने लगती है। इसलिए दैनिक शाखा का महत्व है। दैनिक शाखा, संस्कार देने वाला एक विद्यालय ही है। देशभक्ति की वह एक उपासना है। हम प्रतिदिन भगवान का पूजन करते हैं, भगवान का स्मरण करते हैं, बिल्कुल उसी तरह देशपूजन के लिए शाखा है।

शाखा का प्रत्येक छोटा-बड़ा कार्यक्रम महत्व का है। खेल भी संघ-पद्धति से ही खेलना चाहिए। अपनी नेकर, दण्ड, ध्वजप्रणाम, दक्ष, आरम, अपने खेल इन सबका महत्व है, उद्देश्य है। ये हमें एकता, धैर्य एवं शौर्य के संस्कार देते हैं। बिल्कुल सादी-सरल बातों के भी मन पर संस्कार होते रहते हैं। अच्छे परिणामों को ही संस्कार कहते हैं। संस्कारों से ही संस्कृति उत्पन्न होती है और विकारों से विकृति। मनुष्य संस्कारों से सुसंस्कृत और विकारों से विकृत होता रहता है। प्राणि-मात्र केवल प्रकृति से चलता रहता है।

घास की हरियाली देखी और वहां दो बैल आ गए। उनमें से एक दुबला और दूसरा मोटा। मोटा बैल यह नहीं विचार करेगा कि यह दुबला बैल भूखा है, उसे प्रथम खाने दिया जाए। बैल की यह प्रकृति है। मानव इस प्रकृति से ऊपर उठ सकता है। वह स्वयं भूखा रहकर दूसरे को खिला सकता है। वह संस्कृति है। किन्तु बैल में विकृति नहीं आती। घास खा कर पेट भरने के पश्चात् बची घास को बांध कर वह नहीं ले जाता। मनुष्य का कोई भरोसा नहीं है। इसलिए अपने यहां संस्कारों की व्यवस्था की गई है। अपना घर, अपने विद्यालय यह संस्कार कराने के स्थान हैं। जाति-पाति का विचार न करते हुए हम सब एक हैं, यह हम शाखा कार्यक्रमों में से सीखते

हैं। सामूहिक रूप से कैसा आचरण रहे, यह सीख हमें अपने खेलों से मिलती है। अपनी समता हमें अनुशासन के संस्कार और आज्ञा पालन सिखाती है। इस तरह एकता के, सामाजिकता के और अनुशासन के संस्कार कराने का विद्यालय यानी अपनी शाखा है।

शीत शिविर, बैठकें, संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग, साप्ताहिक एकत्रीकरण इन सबकी रचना इसी उद्देश्य से की जाती है। इन कार्यक्रमों द्वारा संघ ने स्वयंसेवकों के मनों से जातिवाद, छुआछूत, छोटे-बड़े आदि के भेदभाव दूर किए हैं ओर समस्त हिन्दू एक हैं, यह भाव सबके मनों में भरा है। संघ स्थान पर होने वाले ये संस्कार स्वयंसेवकों को अपने परिवारों में, अपने व्यवसाय में, अपनी मित्र-मण्डली में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए, ऐसी संघ की अपेक्षा है। संघ शाखा के कारण स्वयंसेवकों के व्यक्ति-जीवन में परिवर्तन होगा ही। किन्तु उनके द्वारा समाज में ईष्ट परिणाम और परिवर्तन हो और अपना सम्पूर्ण समाज एकरस, एकात्म और चारित्र्य-सम्पन्न हो, ऐसी संघ की अपेक्षा है। इसलिए शाखा को संघ समाज-परिवर्तन का साधन मानता है। ऐसा साधन, जिससे तेजोभंग न करते हुए लोगों में सहजता से परिवर्तन भी हो जाता है।

संघ के नित्य और नैमित्तिक सब कार्यक्रमों का यह उद्देश्य है और इन सब कार्यक्रमों की अत्यंत विचारपूर्वक रचना की गई है।

जून 2013 में उत्तराखंड में आई आपदा पीड़ितों की सहायता के लिए सामग्री ले जाते हुए स्वयंसेवक

उड़ीसा में आए फालिन तूफान पीड़ितों को राहत शिविर में भोजन करवाते हुए स्वयंसेवक

संघ के आयाम

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यह सम्पूर्ण समाज का संगठन है। डॉक्टर जी का उद्देश्य समाज में कोई संगठित टोली निर्माण करने का नहीं था। एक बार नागपुर में हिन्दु-मुसलमानों के दंगे का वायुमण्डल निर्माण हुआ था। हिन्दुत्व का जिसे गर्व था, ऐसे एक नेता ने डॉक्टर जी से पूछा, 'नागपरु में दंगा हुआ तो आपका संघ क्या करेगा?' डॉक्टर जी ने उत्तर दिया, 'मैं सब स्वयंसेवकों को कार्यालय में बुलाऊंगा और रजाई ओढ़कर सो जाने के लिए कहूंगा।' क्या यह उत्तर विचित्र नहीं है? किन्तु इस उत्तर में महान् अर्थ भरा है। वह अर्थ यह है कि दंगे के समय सब समाज को अपने-अपने घरों के दरवाजे, खिड़कियां बन्द करते हुए आराम करना है और संघ स्वयंसेवकों को कन्धों पर डण्डा रखते हुए मुहल्लों में गश्त लगानी है - इसलिए संघ नहीं चल रहा है, यह डॉक्टर जी बतलाना चाहते थे।

संघ का एक विशिष्ट गणवेश है। किन्तु वह केवल कार्यक्रम के लिए। हमेशा वह वेश पहन कर घूमें, कम से कम काली टोपी तो हमेशा पहने, ऐसा संघ नहीं कहता। संघ में प्रचारक हैं। संघ कार्य के लिए वे अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किए हुए एक तरह के सन्यासी ही हैं। लेकिन डॉक्टर जी ने उनके लिए कोई अलग वेश नहीं बतलाया। समाज के अन्दर अपना अलगपन दिखाना संघ को मान्य नहीं है। लोगों के लिए अलौकिक यानी असमान्य न रहे, यह सीख सन्त ज्ञानेश्वर की है। संघ ने वह सीख आचरण में उतारी है। संघ और समाज एकरूप हो, यह संघ की भूमिका है, अपेक्षा है।

इसका एक महान् अर्थ है। यह हमें ठीक से समझ लेना चाहिए। समाज कभी एक ही तरह का नहीं रहता, एक ही प्रकार से नहीं चलता। समाज अनेक अंगों से कार्यरत रहता है। वे कार्य कम-अधिक महत्व के रहते हैं, किन्तु वे सब समृद्ध राष्ट्र जीवन के लिए आवश्यक रहते हैं। समाज-जीवन में एक क्षेत्र राजनैतिक रहता है, एक क्षेत्र शैक्षणिक रहता है। इसी तरह औद्योगिक, सांस्कृतिक, आर्थिक ऐसे अनेक क्षेत्र रहते हैं। इन क्षेत्रों के अनेक घटक रहते हैं जैसे विद्यार्थी, महिलाएं, किसान, मजदूर, वनवासी, आर्थिक दृष्टि से दुर्बल नागरिक आदि-आदि।

सम्पूर्ण समाज के संगठन का अर्थ है इन सब क्षेत्रों का संगठन, इन सब घटकों का संगठन। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का संगठन होने से संघ कार्यकर्त्ता इन सब क्षेत्रों में गए हैं। संघ की अपेक्षा है कि वे उन सब क्षेत्रों को प्रभावित करें और कार्यकर्त्ता संघ की अपेक्षा पूर्ण कर रहे हैं। इन सब क्षेत्रों में संघ प्रभाव का निर्माण हो, इसका क्या अर्थ है? उन सब क्षत्रों में होने वाली हलचलों का, क्रियाकलापों का सूत्र संचालन संघ अधिकारियों के हाथों में रहे, क्या इसका ऐसा अर्थ है? ऐसा अर्थ नहीं है। यह सम्भव नहीं, आवश्यक भी नहीं तथा संघ की यह अपेक्षा भी नहीं है। संघ का प्रभाव यानी संघ के विचारों का प्रभाव तथा जिस सामाजिक चारित्र्य की संघ की कल्पना है, उस चारित्र्य का प्रभाव।

संघ का विचार या सिद्धान्त कौन सा? यह हिन्दू राष्ट्र है। यह हिन्दू राष्ट्रवाद यानी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार सब क्षेत्रों में प्रस्थापित होना चाहिए। विश्व के अन्य राष्ट्रों में राष्ट्र याने क्या, यह विषय विवाद का नहीं रहता। अपने ही देश में यह विषय विवाद का बना है। हिन्दू राष्ट्र का सिद्धान्त निर्विवाद रूप से सब क्षेत्रों में स्थापित हो, यह इच्छा संघ की है। इसके लिए संघ का प्रयत्न है।

संघ को अभिप्रेत ऐसा चारित्र्य कौन सा? यह समाज मेरा है और मैं इस समाज का हूं, ऐसी एकत्व की भावना निर्माण कर

तद्नुसार अपने जीवन की रचना करना, तद्नुसार जीवन जीना यानी चारित्र्य-सम्पन्न जीवन जीना, ऐसा संघ मानता है। समाज व्यक्तियों से बनता है। व्यक्ति और समाज एकरूप रहते हैं, तथापि व्यक्ति को समझना चाहिए कि मैं समाज के लिए हूं। मेरे आचरण से समाज का भला होना चाहिए। अपने स्वार्थ के लिए मैं समाज का नुकसान नहीं होने दूंगा। शंकराचार्य जी के एक स्तोत्र में यह भाव बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। भक्त भगवान से कहता है, 'हे भगवन्! अब तेरा प्रत्यक्ष दर्शन होने के कारण भक्त और भगवान यह भेद समाप्त हो गया है। द्वैत अदृश्य हो गया है। अद्वैत निर्माण हुआ है। फिर भी मैं तेरे लिए हूं। तू मेरे लिए नहीं। लहर समुद्र की रहती है। समुद्र लहर का नहीं होता, मूल संस्कृत का श्लोक इस प्रकार है :

'यद्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
समुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रों न तारंगः।।

ऐसे समाजपरक जीवन शैली से सम्पूर्ण राष्ट्र ओतप्रोत हो, ऐसी संघ की आकांक्षा है। संघ का यह तत्वज्ञान और संघ की चारित्र्य की यह संकल्पना लेकर संघ कार्यकर्त्ता जीवन के विविध क्षेत्रों में गए हैं। सन् 1925 में आरम्भ हुए संघ में बाल स्वयंसेवक आए थे। कालान्तर में वे तरुण बने और उन्होंने अपने साथ अनेक तरुणों को जोड़ा। स्वाभाविकत: संघ का पहला आयाम विद्यार्थी जगत की दिशा में हुआ। सन् 1949 में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्थापना हुई। उस काल में साम्यवाद का बहुत बोलबाला था। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ ही था। रूस की विजय हुई थी। इतना ही नहीं एक महान् जागतिक शक्ति के रूप में रूस का दबदबा निर्माण हुआ था। रूस की विजय और शक्ति के कारण उसका जो साम्यवादी तत्वज्ञान है, वही दुनिया की सब समस्याएं हटाते हुए समता का वायुमण्डल लायेगा, ऐसा प्रचार जोरों से आरम्भ हुआ था और इस विचार की ओर बुद्धिमान युवक विद्यार्थियों की पीढ़ी आकर्षित हुई थी। साम्यवाद की इस आंधी ने सारी दुनिया में और हिन्दुस्थान में भी तूफान मचाते समय राष्ट्रवाद का सिद्धान्त स्वीकारते हुए विद्यार्थी परिषद् खड़ी हुई।

उसके विकास क्रम के इतिहास को बतलाने का स्थान यह नहीं है। किन्तु आज भारत में विद्यार्थियों के सबसे बड़े संगठन के रूप में विद्यार्थी परिषद् खड़ी है, यह बात ध्यान में रखने योग्य है। यह राष्ट्रवाद की विजय है।

15 अगस्त, 1947 को अपना देश स्वाधीन हुआ। सन् 1950 में अपना नया संविधान लागू हुआ। प्रजातन्त्र गणतन्त्र हुआ। गणतन्त्र का मतलब है जहां कोई राजा नहीं रहता, जनता ही सार्वभौम रहती है, ऐसी व्यवस्था। इस व्यवस्था में जनता का सहभाग रहता है। जनता ही अपने राज्यकर्ता चुनती है। संघ के स्वयंसेवकों को भी नागरिक के रूप में 'मत' का अधिकार प्राप्त हुआ। उन्होंने किसे मत या वोट देना है? समाजवादी, साम्यवादी दल तो विदेशी विचारधारा लेकर चलने वाले दल हैं। कांग्रेस यह स्वदेशी दल है। किन्तु वह संघ का द्वेष करने वाला। सन् 1948 में महात्मा गान्धी की हत्या की गई। उस हत्या से संघ का किसी भी तरह का सम्बन्ध न होने पर भी, संघ को नष्ट करने में कांग्रेस सरकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी। हजारों लोगों को कारावास में बन्द किया। कांग्रेस के लोगों ने संघ के कार्यालयों पर हमले किए। स्वयंसेवकों के घर लूटे और जलाए। इस तरह के कांग्रेस दल को स्वयंसेवक किस तरह अपनायेंगे। उस समय डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी सामने आए। स्वतन्त्र भारत के प्रथम मंत्रीमण्डल में वे मन्त्री थे। उन्होंने भारतीय जनसंघ की स्थापना की। उन्होंने संघ से कुछ कार्यकर्त्ता मांगे। स्वयं राजनीति से अलग रहते हुए भी संघ ने भी पं. दीनदयाल उपाध्याय, अटल बिहारी वाजपेयी, सुन्दर सिंह भण्डारी, नानाजी देशमुख, कुशाभाऊ ठाकरे, रामभाऊ गोडबोले, वसन्तराव ओक, रामप्रसाद दास, पं. बच्छराज व्यास, गोपाल ठाकुर, भाऊराव देशपाण्डे आदि अपने श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता डॉ. मुखर्जी की सहायता के लिए मुक्त किए।

आज इस घटना को 64 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। इस मण्डली ने राजनैतिक क्षेत्र में कितना ठोस काम किया यह जनसंघ, आज जो भारतीय जनता पार्टी के रूप में नया दल बना है, उसकी जनप्रियता

और शक्ति से पता चलता है। भारतीय जनता पार्टी को अभी बहुत कार्य करना है, जनप्रियता अभी बहुत बढ़ानी है। राजनैतिक वायुमण्डल शुद्ध और स्वच्छ करना है; किन्तु यह सिद्ध हुआ कि वह अपने देश का सबसे बड़ा राजनैतिक दल बना है। उसका दबदबा इतना बढ़ा है कि उसके सम्मुख कोई भी एक अन्य राजनैतिक दल टिक नहीं सकेगा, ऐसा प्रत्येक अन्य राजनैतिक दल को लगता है। स्वाधीनता के प्रथम पच्चीस वर्षों में कांग्रेस दल का जो स्थान था, वह भारतीय जनता पार्टी को मिला है। संघ के स्वयंसेवकों द्वारा निर्माण किया हुआ यह परिवर्तन है।

श्रमिक क्षेत्र भी महत्व का था। इस क्षेत्र पर समाजवादी तथा साम्यवादी विचारों का ही एकाधिकार था। कारण, यह विचार वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को मानता था। यह सिद्धान्त कहता है कि दुनिया में दो ही वर्ग हैं - एक धनियों का, मालिकों का, कारखानादारों का और दूसरा गरीबों का, कर्मचारियों का, मजदूरों का। इनमें सांप-नेवला जैसी स्वाभाविक दुश्मनी है। साम्यवादी तो कहते थे कि दुनिया के सब मजदूर एक हैं, राष्ट्र आदि सब झूठ है। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रवाद पर आधारित आंदोलन आवश्यक था। यह आवश्यकता पूर्ण करने हेतु भारतीय मजदूर संघ की स्थापना सन् 1955 में हुई। संघ के एक वरिष्ठ प्रचारक श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी जी ने इसकी स्थापना की। भारतीय मजदूर संघ ने वर्ग-संघर्ष की संकल्पना अमान्य की। राष्ट्रवाद का आधार लिया। विदेशी आदर्शों को नकारा। प्राचीन देवता विश्वकर्मा को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। लोगों ने मजाक किया कि तुम मजदूरों को संगठित कर ही नहीं सकोगे, क्योंकि तुम्हारा वर्ग-संघर्ष पर विश्वास नहीं है। आज भारतीय मजदूर संघ की कैसी स्थिति है? वह भारत में मजदूरों का सबसे बड़ा संगठन है।

शिक्षा का क्षेत्र भी महत्व का है। अंग्रेजों का शासन चालू हो जाने से, उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति यहां चलाई। इस शिक्षा पद्धति से लोगों का रंग नहीं बदला। काले रंग के, गोरे रंग के नहीं हुए, किन्तु मन बदले, विचार बदला। जो-जो अंग्रेजों

का, जो-जो पाश्चात्यों का, वह सब अच्छा, अनुकरणीय, ऐसा लोग मानने लगे। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा ली, तो वह बहुत अच्छी शिक्षा होगी, ऐसी समझ बलवान होती गई। तब स्वयंसेवकों ने प्रथम उत्तर प्रदेश में शिशु मन्दिर चालू किए। हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाले शिशु मन्दिर, किन्तु ईसाई कान्वेण्ट के बराबरी के या उनसे भी श्रेष्ठ। इन्हीं शिशु मन्दिरों का आगे चलकर सम्पूर्ण देश में विस्तार हुआ। 'विद्या भारती' की स्थापना हुई। आज विद्या भारती के सुझावों के अनुसार शिक्षा देने वाले-संस्कृत भाषा, योगासन, देशभक्तिपूर्ण कार्यक्रम चलाने वाले चौदह हजार से अधिक विद्यालय चल रहे हैं। सरकार से अनुदान के रूप में एक पैसा भी न लेते हुए चल रहे हैं, यह इन विद्यालयों की विशेषता है।

धार्मिक क्षेत्र जनसाधारण की श्रद्धा का क्षेत्र है। अलग-अलग महन्त, मठाधीश, सन्यासी, साधु, शंकराचार्य इन सबका जनमानस पर बड़ा प्रभाव है। इन सबको एकत्र लाकर, इनकी धार्मिक संस्थाओं को तथा उनके प्रभावों को राष्ट्रीय पुनरुत्थान से जोड़ना आवश्यक था। संघ के द्वितीय सरसंघचालक (स्व.) श्री गुरुजी ने यह कठिन कार्य स्वयं सम्भाला और हिन्दू धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के, उपसम्प्रदायों के प्रमुखों को एकत्र कर विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना की। इस विश्व हिन्दू परिषद् की व्यासपीठ से श्रद्धेय धार्मिक नेताओं ने घोषणा की कि अस्पृश्यता, यह धर्म का भाग नहीं है। यह रूढ़ि है और यह अब समाप्त होना चाहिए। उन्होंने यह भी घोषणा की कि पूर्व काल में जिन्होंने अपना धर्म त्यागते हुए अन्य धर्म को स्वीकार किया, वे सब स्वधर्म में लौट सकते हैं। धर्माचार्यों की इन घोषणाओं से हिन्दू समाज में नव-चैतन्य निर्माण हुआ।

इसी तरह किसान क्षेत्र में, वनवासी क्षेत्र में, उद्योग के क्षेत्र में, सेवा के क्षेत्र में तथा संस्कारों के क्षेत्र में अलग-अलग संगठन स्वयंसेवकों ने खड़े किए और सम्पूर्ण समाज जीवन को अपने विचारों और आचरण शैली से मथ डाला है।

संघ के कुछ स्वयंसेवक व्यापार या नौकरी के निमित्त विदेशों

में गए थे। किन्तु वहां भी हम संघ के स्वयंसेवक हैं, हिन्दू हैं, यह भूले नहीं। उन्होंने केनिया, इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशों में हिन्दुओं को एकत्रित किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ढंग से 'हिन्दू स्वयंसेवक संघ' की स्थापना की। इस समय विश्व में पैंतीस देशों में संघ की नियमित शाखाएं हैं। वास्तव में संघ का यह आश्चर्यकारक विस्तार है।

संघ की रीति

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मात्र केवल एक विचार नहीं, केवल एक संस्था नहीं, वह जीवन जीने की एक पद्धति है। जैसे व्यक्तिगत जीवन, वैसे ही सामाजिक जीवन भी। यह जीवन पद्धति अर्थात् संघ की रीति। जैसे किसी परिवार की रीति बनती है, वैसी ही संघ की बनी है। वह रीति पुस्तकें लिखकर या अनेक भाषण देकर नहीं बनी है। यह उदाहरणों से बनी है। इस रीति के कुछ बिन्दु -

1. संघ में हम सब मित्र रहते हैं यानी बराबरी के रहते हैं। संघ में अधिकारी भी रहते हैं, किन्तु वह व्यवस्था का एक भाग है, केवल योग्यता का नहीं। अधिकारी में योग्यता रहना आवश्यक है। लेकिन क्या एक ही में योग्यता रहती है? संघ ऐसा नहीं मानता। इसलिए सब एक-दूसरे के मित्र और सहयोगी हैं। संघ में उच्च-नीच भाव नहीं है।

2. सब बराबरी के होने से संघ में स्पर्धा को स्थान नहीं है। स्पर्धा नहीं, तो ईर्ष्या और जलन भी नहीं। सबके सम्बन्ध स्नेह भावना के रहते हैं। उसी तरह स्नेह और प्रेम का परस्पर व्यवहार रहता है।

3. आज्ञापालन व अनुशासन यह संघ की विशेष रीति है, लेकिन इसलिए दण्डशक्ति की व्यवस्था नहीं है। संघ शाखा के कार्यक्रमों द्वारा निर्माण होने वाला वायुमण्डल और संघ कार्यकर्त्ताओं का निजी आचरण - इससे संघ में आज्ञापालन और अनुशासन निर्माण हुआ है। हर एक को यह पता रहता है कि निजी स्वार्थ के लिए आज्ञा नहीं दी जाती। आज्ञा सामूहिक कल्याण के लिए रहती है। इसीलिए आज्ञा का पालन होता है। एक सामान्य मुख्य शिक्षक

'दक्ष' आज्ञा देता है और सरसंघचालक से सामान्य स्वयंसेवक तक सब लोग हाथ-पैर जोड़कर सीधे खड़े रहते हैं। सबके लिए नियम समान, ऐसी व्यवस्था डॉक्टर हेडगेवार जी ने संघ के आरम्भ से करने के कारण किसी तरह दण्ड-व्यवस्था न रहने पर भी संघ में अनुशासन रहता है। संघ के इस अनुशासन की अमिट छाप जन-मानस में पहुंची है। संघ का कार्यक्रम अर्थात् निश्चित समय पर आरम्भ होगा ही। कार्यक्रम समाप्ति तक कोई उठेगा नहीं, हटेगा नहीं। कार्यक्रम की ओर सब दक्ष चित्त से ध्यान देंगे यह जैसे निश्चित हो गया है।

4. संघ यह मनुष्यों का संगठन है। मानव सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से मिलकर बना होता है। किसी की गलती होगी ही नहीं, यह विश्वास किस तरह दिया जा सकेगा? किन्तु अपनी नाराजगी या दु:ख प्रकट करने की संघ की एक रीति है। वह है शिकायत वरिष्ठ अधिकारी के पास करना। बिल्कुल सरसंघचालक तक पहुंचने में सबको सुविधा है। यानी किसी का दोष ध्यान में आने पर वह वरिष्ठों के पास पहुंचाना और नीचे की ओर गुणों का बखान करना। बराबरी के लोगों से या सामान्य स्वयंसेवकों से बोलते समय, चर्चा करते समय सबके गुण ही बतलाना चाहिए, ऐसी अपेक्षा संघ की रहती है। हरेक में कोई न कोई गुण रहते ही हैं। उन गुणों की ही चर्चा होनी चाहिए। दोष दिखने पर वरिष्ठ अधिकारी के पास पहुंचाना चाहिए। कारण, वही अधिकारी सम्बन्धित व्यक्ति से बात करते हुए उसकी कमी बतलाते हुए उसे सुधारने का अवसर दे सकता है। सार्वजनिक चर्चा करने से कोई सुधर गया, ऐसा कभी न तो हुआ है और न आगे भी होगा। संघ अर्थात् एक परिवार, हम सब उसके घटक। गलती हुई, तो बड़ों से कहना। उनके द्वारा सबको सम्भाल लेना। संघ इसी पद्धति से आज तक चला है। यहां चालाकी नहीं, धोखाधड़ी नहीं। सभी स्वच्छ और निर्मल।

5. सादगी से रहना, यह संघ की रीति है, इसके पूर्व बतलाया है कि लोगों में हम असामान्य न दिखें। संघ कार्यकर्त्ताओं को सादगी

से रहना है। कम खर्च करते हुए रहना, यह संस्कार तो कार्यकर्त्ताओं को मानो बचपन से ही मिला है। इसलिए संघ के किसी भी कार्यक्रम में दिखावट-सजावट से प्रभावित करने का भाव नहीं रहता, न ही रहना चाहिए। कार्यकर्त्ताओं के कपड़े, उनकी आदतें सादगी की रहनी चाहिए। संघ के अनेक प्रचारक अलग-अलग गांवों में, स्थानों में, गृहस्थों के घरों में रहते हैं। केवल बड़े नगरों में कार्यालय हैं। कार्यालय रहने पर भी भोजन व्यवस्था साधारणतः एक प्रान्त में एक-दो स्थानों पर ही रहती है। कार्यकर्त्ता के बाजार के भोजनालय या होटल में भोजन करना संघ को मान्य नहीं है। वह किसी स्वयंसेवक के घर भोजन करेगा। फिर वह उस परिवार का ही बन जाता है। वहां के लड़के-लड़कियों का वह भाई बनता है। बड़ों का वह पुत्र बनता है। बिल्कुल युवावस्था और विकारक्षम आयु में यह प्रचारक मण्डली भिन्न-भिन्न घरों में रही है, किन्तु कहीं भी स्खलन यानी गिरावट नहीं, यह संघ की विशेषता है। संघ कार्यकर्त्ताओं का ऐसा चारित्र्य है। ऐसी संघ की रीति है।

परिशिष्ट 1

संघ के सरसंघचालक

आद्य सरसंघचालक - डॉक्टर हेडगेवार

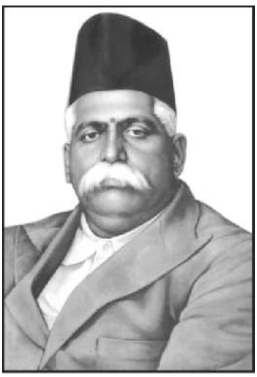

संघ के संस्थापक डॉक्टर केशव बलिराम हेडगेवार यह संघ के प्रथम अर्थात् आद्य सरसंघचालक थे। उनका जन्म 1 अप्रैल सन् 1889 के दिन हुआ। उस दिन विक्रम संवत् 1946 की वर्ष प्रतिपदा थी। उनकी माता का नाम रेवती था।

डॉक्टर जी ने संघ की स्थापना सन् 1925 में की। प्रथम नागपुर तथा उसके अड़ोस-पड़ोस के स्थानों पर संघ की शाखाएं शुरू हुईं। सन् 1930 में डॉक्टर जी ने जंगल-सत्याग्रह में भाग लिया। उन्हें इस कारण सजा हुई और उन्हें अकोला (विदर्भ) कारागार में रखा गया। वहां डॉक्टर जी का अनेक देशभक्त नेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध बना और कारागार से मुक्त होने पर संघ की शाखाएं सम्पूर्ण विदर्भ में प्रारम्भ हुईं। उसके पश्चात् क्रम महाराष्ट्र का आया।

सन् 1936 के पश्चात् अन्य प्रान्तों में कार्यकर्त्ताओं को भेजना प्रारम्भ हुआ। सन् 1940 तक असम तथा उड़ीसा छोड़कर शेष सभी प्रान्तों में संघ शाखाएं प्रारम्भ हो गई थीं। 9 जून, 1940 को नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग के दीक्षान्त समारोह में डॉक्टर जी ने कहा था, 'आज अपने सम्मुख मैं हिन्दू राष्ट्र के छोटे स्वरूप को देख रहा हूं।' डॉक्टर जी के जीवनकाल में इस तरह संघ देशव्यापी हुआ था।

दिनांक 21 जून, 1940 को डॉक्टर जी का नागपुर में निधन हुआ। उस समय उनकी आयु केवल 51 वर्ष की थी।

द्वितीय सरसंघचालक – श्री गुरुजी

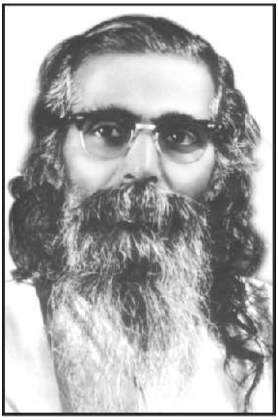

आद्य सरसंघचालक डॉक्टर केशव बलिराम हेडगेवार की मृत्यु के पश्चात् उनकी ही इच्छानुसार श्री माधव सदाशिव गोलवलकर सरसंघचालक हुए। सरसंघचालक बनने के पूर्व से ही उन्हें गुरुजी कहते थे। 'गुरुजी' इस नाम से ही परिचय दिया जा रहा है।

विक्रम संवत् 1962 के फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन गुरुजी का जन्म हुआ। ईसाई दिनांक के अनुसार 19 फरवरी, 1906 को। गुरुजी के पिताजी का नाम सदाशिव और माता का नाम लक्ष्मीबाई था। गुरुजी की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पिताजी की नौकरी में स्थानांतरण होते रहने के कारण अनेक स्थानों पर हुई। नागपुर के हिस्लाप कॉलेज से उन्होंने इण्टर साइन्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की पढ़ाई काशी के हिन्दू विश्वविद्यायल में हुई। वहां से उन्होंने प्राणिशास्त्र में एम.एससी. की उपाधि प्राप्त की। यह वर्ष सन् 1928 का था।

सन् 1930 में वे उसी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। तब से उन्हें 'गुरुजी' यह नाम प्राप्त हुआ। काशी में रहते हुए उनका संघ से घनिष्ठ परिचय हुआ। काशी में ही उनका डॉक्टर हेडगेवार जी से परिचय हुआ। प्राध्यापक रूप में दो वर्ष कार्य करने पर वे नागपुर लौटे और वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु वकालत कभी नहीं की।

इस समय उनका आकर्षण अध्यात्म की ओर बढ़ा। नागपुर के रामकृष्ण आश्रम में उनका जाना बढ़ता गया। डॉक्टर हेडगेवार जी से भी घनिष्ठता बढ़ रही थी; किन्तु अन्त में आध्यात्मिक प्रेरणा का प्रभाव अधिक हुआ और वे बंगाल के सारगाछी आश्रम में पहुंचे। स्वामी विवेकानन्द के गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्द इस आश्रम के प्रमुख थे। गुरुजी ने उनसे सन्यास की दीक्षा ली। स्वामी अखण्डानन्द

की मृत्यु के पश्चात् गुरुजी नागपुर लौटे। डॉक्टर जी ने अब गुरुजी से अधिक सम्पर्क बढ़ाया। सन् 1938 के नागपुर संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी रूप में उनकी नियुक्ति की। सन् 1939 में उन्हें संघ का सरकार्यवाह बनाया और डॉक्टर जी की मृत्यु के पश्चात् 21 जून, 1940 के दिन वे सरसंघचालक हुए।

करीब तैंतीस वर्ष गुरुजी सरसंघचालक रहे। उनके इस कार्यकाल में सबसे कठिन वर्ष सन् 1948 था। महात्मा गान्धी की हत्या के बहाने संघ पर लगाए गए प्रतिबन्ध का वह वर्ष था, किन्तु गुरुजी के दृढ़ और कुशल नेतृत्व से संघ उस अग्नि-परीक्षा से सकुशल बाहर निकला।

इन तैंतीस वर्षों में संघ का बहुत विस्तार हुआ। जब जिलों में संघ फैला। संघ-कार्य का स्वाभाविक प्रभाव समाज-जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी दिखने लगा। विद्यार्थी परिषद्, भारतीय जनसंघ, भारतीय मजदूर संघ, वनवासी कल्याण आश्रम, विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना इसी काल में हुई। विश्व-विभाग को भी इसी काल में निश्चित रूप मिला।

श्री गुरुजी को सन् 1971 से कर्क रोग (कैन्सर) ने घेरा है, यह स्पष्ट हुआ। मुम्बई में उनकी चिकित्सा भी हुई। शल्य क्रिया के पश्चात् कुछ समय विश्राम कर उन्होंने पुनः देशव्यापी प्रवास आरम्भ किया; किन्तु सन् 1973 मार्च मास की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक से उनका स्वास्थ्य अधिक बिगड़ने लगा। अन्त में दिनांक 5 जून, 1973 को नागपुर में उनका देहावसान हुआ।

तृतीय सरसंघचालक - श्री बालासाहब देवरस

तृतीय सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस का पूर्ण नाम मधुकर दत्तात्रेय देवरस। मार्गशीर्ष शुक्ल 5, सन् 1915 के दिन उनका जन्म हुआ। उनकी सम्पूर्ण शिक्षा नागपुर में ही हुई। नागपुर के सुप्रसिद्ध न्यू इंग्लिश हाईस्कूल से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और वहीं के मारिस कॉलेज (वर्तमान नाम- नागपुर

महाविद्यालय) से वे बी.ए. हुए और पश्चात् एल.एल.बी. की भी परीक्षा उत्तीर्ण की।

किन्तु उन्हें वकालत का व्यवसाय करना नहीं था। पूर्ण समय संघ-कार्य ही करना था। डॉक्टर हेडगेवार जी ने उन्हें, प्रथम बंगाल प्रान्त में कार्य करने भेजा; किन्तु शीघ्र ही उन्हें नागपुर बुला कर नागपुर के कार्य का दायित्व सौंपा।

नागपुर नगर कार्यवाह, सह सरकार्यवाह, सन् 1965 में सरकार्यवाह और सन् 1973 में श्री गुरुजी के देहावसान के पश्चात् सरसंघचालक, ऐसा उनका संघ रचना में प्रवास है। जब वे सरसंघचालक हुए, उस समय उनकी आयु 58 वर्ष की थी और मधुमेह की बीमारी से वे त्रस्त थे; लेकिन अपनी बीमारी की चिन्ता न करते हुए डॉक्टर हेडगेवार जी द्वारा स्थापित और गुरुजी द्वारा विस्तार-प्राप्त संघ उन्होंने और अधिक बढ़ाया। सेवा-कार्य का एक नवीन आयाम संघ स्वरूप को प्राप्त हुआ। आज केवल संघ स्वयंसेवकों द्वारा चलाए जा रहे सेवा कार्य 1 लाख 50 हजार से भी अधिक हैं। 'सेवा भारती' नाम से वे चलाए जाते हैं। बाल संस्कार केन्द्र, बस्तीगृह, ग्रामीण विद्यालय औषधि केन्द्र, अनाथालय, कुष्ठ निवारण गृह जैसे विविध कार्य 'सेवा भारती' द्वारा परिचालित हैं। विश्व हिन्दू परिषद, वनवासी कल्याण आश्रम आदि संस्थाओं के भी इसी तरह के सेवा कार्य चालू हैं; किन्तु ये कार्य अलग से हैं। सेवा भारती के सेवा प्रकल्पों में इनका अन्तर्भाव नहीं है।

सन् 1975 में उस समय की प्रधानमंत्री इन्दिरा गान्धी ने देश में आपातकाल लगाया और उस समय संघ पर उन्होंने प्रतिबन्ध लगाया। उनकी राजनीति तथा शासन का विरोध करने वाले राजनैतिक दलों पर उन्होंने पाबन्दी नहीं लगाई; किन्तु संघ को नष्ट करने की आसुरी महत्वाकांक्षा से उन्होंने संघ पर पाबन्दी लगाई। संघ विरोध में खूब प्रचार किया। हजारों कार्यकर्त्ताओं को 'मीसा' नाम के काले कानून के अन्तर्गत कारागारों में डाल दिया। उन्होंने सब लोगों का स्वातन्त्र्य नष्ट किया। उस समय जनतन्त्र की पुनः प्रतिष्ठा के लिए जो आन्दोलन हुआ, उसमें संघ ने भी भाग लिया तथा वह आन्दोलन सफल कर दिखाया। यह महान्

कार्य श्री बालासाहब के सरसंघचालक रहते हुए सम्पन्न हुआ।

सन् 1992 से बालासाहब का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। प्रवास करना उनके लिए असम्भव हो गया। बोलने में भी कठिनाई होने लगी। तब उन्होंने स्वयं निवृत्त होने का निर्णय लिया और सन् 1994 में श्री राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) को अपना उत्तराधिकारी अर्थात् सरसंघचालक के रूप में नियुक्त किया। 'मैं कार्य नहीं कर सकता', यह देखते ही दायित्व से हटने की उत्तम पद्धति बालासाहब ने आरम्भ की।

17 जून, 1996 के दिन पूणे के 'रूबी शल्य क्लीनिक' चिकित्सालय में उनका निधन हुआ।

चतुर्थ सरसंघचालक - प्रो. राजेन्द्र सिंह

तृतीय सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस के स्वास्थ्य खराब होने के कारण उन्होंने 11 मार्च, 1994 को श्री राजेन्द्र सिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। संघ के इतिहास में यह पहली घटना थी कि सरसंघचालक के जीवित रहते उनके उत्तराधिकारी की घोषणा की गई। उस दिन से श्री राजेन्द्र सिंह, जिनको सारे लोग 'रज्जू भैया' नाम से जानते थे, संघ के चतुर्थ सरसंघचालक बने।

रज्जू भैया का जन्म 1922 में हुआ। उनके पिताजी श्री कुंवर बलवीर सिंह उत्तर प्रदेश शासन के सिंचाई विभाग में अभियन्ता थे। वे बाद में मुख्य अभियन्ता के पद से निवृत्त हुए। रज्जू भैया की प्राथमिक पढ़ाई नैनीताल में हुई। मैट्रिक की परीक्षा उन्नाव जनपद से प्रथम श्रेणी में उन्होंने उत्तीर्ण की। बाद की शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यायल में हुई। केवल 21 वर्ष की आयु में इलाहाबाद विश्वविद्यायल से भौतिक शास्त्र में एम.एससी. की पदवी उन्होंने प्राप्त की। पूरे विश्वविद्यायल में उनका द्वितीय क्रमांक था। तुरन्त ही वे विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किए गए।

उत्तर प्रदेश में संघ कार्य की बढ़ती आवश्यकता को देखकर सन् 1966 में रज्जू भैया ने स्वेच्छा से भौतिक शास्त्र विभागाध्यक्ष

पद से त्यागपत्र दिया और वे संघ के प्रचारक बने। 1978 में वे संघ के सरकार्यवाह बने। 1987 तक वे इस पद पर कार्य करते रहे। स्वास्थ्य के कारण उन्होंने 1987 में वह पद छोड़ा और नूतन सरकार्यवाह श्री हो.वे. शेषाद्रि के सहयोगी के रूप में सह सरकार्यवाह के नाते कार्य करते रहे। 11 मार्च, 1994 को अ.भा. प्रतिनिधि सभा में तत्कालीन सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस ने श्री राजेन्द्र सिंह को चतुर्थ सरसंघचालक का दायित्व सौंपा।

श्री राजेन्द्र सिंह ऐसे पहले सरसंघचालक हैं, जिन्होंने विदेश में जाकर वहां के हिन्दू स्वयंसेवक संघ के कार्य का निरीक्षण किया। इस हेतु इंग्लैंड, मारिशस, केनिया, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में उनका प्रवास हुआ।

1999 के फरवरी में प्रवास के क्रम में रज्जू भैया जब पुणे में आए, तब अचानक गिर जाने से उनके कमर की हड्डियां टूटी। इस कारण उस वर्ष की लखनऊ में सम्पन्न अ.भा. प्रतिनिधि सभा की बैठक में वे उपस्थित नहीं हो सके। बाद में स्वास्थ्य में पूर्ण सुधार न होने और अधिक बोलने में कठिनाई के अनुभव के कारण उन्होंने अपने दायित्व से मुक्त होने को सोचा और तद्नुसार 10 मार्च, 2000 को श्री कुप्.सी. सुदर्शन को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने की घोषणा नागपुर में अ.भा. प्रतिनिधि सभा की बैठक में की। 14 जुलाई, 2003 को रज्जू भैया जी का पुणे में स्वर्गवास हो गया।

पंचम सरसंघचालक - श्री कुप्.सी. सुदर्शन

रायपुर में 18 जून, 1931 को श्री सुदर्शन जी का जन्म हुआ। रायपुर, दमोह, मण्डला तथा चन्द्रपुर में प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद उन्होंने जबलपुर (सागर वि.वि.) से 1954 में दूरसंचार विषय में बी.ई. की उपाधि प्राप्त करते ही संघ के माध्यम से समाज कार्य करने के लिए प्रचारक जीवन स्वीकार कर लिया। 1964 में उन्हें मध्य भारत प्रान्त-प्रचारक का दायित्व मिला। 1969 से 1971 तक अखिल

भारतीय शारीरिक शिक्षण प्रमुख का दायित्व तथा 1979 में उन्हें अखिल भारतीय बौद्धिक शिक्षण प्रमुख का दायित्व मिला। 1990 में उन्हें सह सरकार्यवाह का दायित्व सौंपा गया।

नागपुर में मार्च, 2009 में सम्पन्न हुई संघ की अ.भा. प्रतिनिधि सभा में श्री सुदर्शन जी ने संघ की गौरवशाली परम्परा का उल्लेख करते हुए सरसंघचालक की नियुक्ति परम्परा, उसमें हुए परिवर्तनों का सन्दर्भ देते हुए नवीन सरसंघचालक के रूप में श्री मोहन भागवत जी की घोषणा कर दी। उन्होंने श्री मोहन भागवत जी को एक कुशल संगठक, सबकी सुनने का धैर्य, अध्ययनशील, विनोदी, प्रसन्न व मधुर स्वभाव का धनी बताया और उनके सरकार्यवाह बनने पर (स्व.) बबुआ जी का कथन उद्धृत किया, 'इन्हें देखते हुए डॉक्टर साहब की याद आती है।' दायित्व निवृति के बाद भी वह देशभर में प्रवास करते रहे। 15 सितम्बर, 2012 को रायपुर में अकस्मात् उनका निधन हो गया।

षष्ठ सरसंघचालक - श्री मोहनराव भागवत

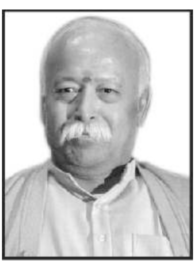

11 सितम्बर, 1950 को महाराष्ट्र के चन्द्रपुर में जन्मे श्री भागवत जी ने अकोला स्थित पंजाब राव कृषि विद्यापीठ से पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त की। पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातकोत्तर अध्ययन अधूरा छोड़ वे आपातकाल में संघ के प्रचारक बन गए। 1977 में अकोला में प्रचारक, 1981 में नागपुर विदर्भ, प्रान्त प्रचारक, 1989 में अ.भा. सह शारीरिक प्रमुख, फिर 1991 में शारीरिक शिक्षण प्रमुख तथा एक वर्ष तक प्रचारक प्रमुख रहे। सन् 2000 में वे सरकार्यवाह के पद पर निर्वाचित हुए और सन् 2009 से संघ के छठे सरसंघचालक हैं।

परिशिष्ट 2

संघ की प्रार्थना

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे
त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोऽहम्।
महामङ्गले पुण्यभूमे त्वदर्थे
पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते ।।1।।

प्रभो शक्तिमन् हिन्दुराष्ट्राङ्गभूता
इमे सादरं त्वां नमामो वयम्
त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयं
शुभामाशिषं देहि तत्पूर्तये।
अजय्यां च विश्वस्य देहीश शक्तिं
सुशीलं जगद् येन नम्रं भवेत्
श्रुतं चैव यत् कण्टकाकीर्णमार्गं
स्वयं स्वीकृतं नः सुगं कारयेत् ।।2।।

समुत्कर्षनिःश्रेयसस्यैकमुग्रं
परं साधनं नाम वीरव्रतम्
तदन्तः स्फुरत्वक्षया ध्येयनिष्ठा
हृदन्तः प्रजागर्तु तीव्राऽनिशम्।
विजेत्री च नः संहता कार्यशक्तिर्
विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्।
परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रं
समर्था भवत्वाशिषा ते भृशम् ।।3।।

।। भारत माता की जय ।।

प्रार्थना का अर्थ

हे वत्सल मातृभूमि! तुझे मेरा सदैव प्रणाम। हे हिन्दुभूमि! तूने ही मुझे सुख से बढ़ाया है। हे महामंगलमयी पुण्यभूमि तेरे ही कार्य में मेरी यह काया (जीवन) समर्पित हो। तुझे मैं अनन्त बार प्रणाम करता हूं।

हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! हम हिन्दू राष्ट्र के अंगभूत घटक, तुझे आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं। तेरे ही कार्य के लिए हमने अपनी कमर कसी है। उसकी पूर्ति के लिए हमें शुभ आशीर्वाद दें।

विश्व के लिए जो अजेय हो ऐसी शक्ति, सारा जगत विनम्र हो ऐसा विशुद्ध शील तथा स्वतः स्वीकृत हमारे कण्टकमय मार्ग को सुगम करने वाला ज्ञान भी हमें दें।

अभ्युदय सहित निःश्रेयस की प्राप्ति का जो एकमेव श्रेष्ठ उग्र साधन है, उस वीरव्रत का हम लोगों के अन्तःकरण में स्फुरण हो। अक्षय तथा तीव्र ध्येयनिष्ठा हमारे हृदय में सदैव जाग्रत रहे!

तेरे आशीर्वाद से हमारी विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति स्वधर्म का रक्षण कर, अपने इस राष्ट्र को परम वैभव की स्थिति पर ले जाने में पूर्णतः समर्थ हो।

।। भारत माता की जय।।

प्रार्थना संबंधी जानकारी

1. अपनी प्रार्थना के तीन श्लोक हैं। वह संस्कृत भाषा में हैं। 'भारत माता की जय' यह प्रार्थना का ही भाग है।

2. प्रार्थना के प्रथम श्लोक का वृत 'भुजंगप्रयात' है। उसकी प्रत्येक पंक्ति में बारह अक्षर हैं।

3. दूसरे और तीसरे श्लोक का वृत्त है 'मेघनिर्घोष'। उसकी प्रत्येक पंक्ति में तईस अक्षर हैं। तेईस अक्षरों की पंक्ति बड़ी होने से हम लोग प्रत्येक पंक्ति के दो भाग करते हैं। प्रथम बारह अक्षर बोलते हैं और बाद में ग्यारह।

4. यह प्रार्थना सन् 1940 से व्यवहार में आई। इसके पूर्व आधी मराठी और आधी हिन्दी में प्रार्थना थी। प्रार्थना के आशय का प्रारूप सन् 1939 में नागपुर के पास सिन्दी में हुई बैठक में तैयार किया गया। उस बैठक में आद्य सरसंघचालक डॉक्टर हेडगेवार, श्री गुरुजी, श्री अप्पाजी जोशी, श्री बाबा साहब आपटे, श्री बालासाहब देवरस ये प्रमुख लोग उपस्थित थे। श्री नानासाहब टालाटुले भी इस बैठक के विचार-विनिमय में सहभागी थे।

5. प्रार्थना के प्रारूप का संस्कृत रूपांतर नागपुर के श्री नरहर नारायण भिड़े ने किया और श्री यादवराव जोशी ने उसे आज बोली जाने वाली पद्धति और स्वर दिया। श्री यादवराव ने ही पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में उसका प्रथम गायन किया।

प्रतिज्ञा और प्रार्थना

प्रतिज्ञा और प्रार्थना का घनिष्ठ संबंध है। प्रतिज्ञा व्यक्तिगत है, प्रार्थना सामूहिक। प्रतिज्ञा में स्वतः का संकल्प रहता है। पुरुषार्थ का निश्चय प्रकट होता है। प्रार्थना में इस संकल्प की पूर्ति के लिए भगवान के आशीर्वाद की याचना रहती है। प्रतिज्ञा में अपने निश्चय के विचार से व्यक्ति में अहंकार आ सकता है। प्रार्थना भगवान की कृपा की अपेक्षा रखने से अहंकार नियंत्रित करती है। केवल प्रार्थना व्यक्ति को भाग्यवादी और निष्क्रिय कर सकती है। प्रतिज्ञा व्यक्ति को कार्यप्रवण करती है। प्रतिज्ञा व प्रार्थना का इस तरह परस्परपूरक मेल है।

परिशिष्ट 3

एकात्मता - मंत्र

यं वैदिका मन्त्रदृशः पुराणा,
इन्द्रं यमं मातरिश्वानमाहुः।
वेदान्तिनोऽनिर्वचनीयमेकं,
यं ब्रह्मशब्देन विनिर्दिशन्ति।।1।।

शैवा यमीशं शिव इत्यवोचन्,
यं वैष्णवा विष्णुरिति स्तुवन्ति।
बुद्धस्तथाऽर्हन्निति बौद्धजैनाः,
सत् श्री अकालेति च सिक्खसन्तः।।2।।

शास्तेति केचित् प्रकृतिः कुमारः,
स्वामीति मातेति पितेति भक्तया।
यं प्रार्थयन्ते जगदीशितारं,
स एक एव प्रभुरद्वितीयः।।3।।

एकात्मता मंत्र का अर्थ

वह प्रभु एक ही है........

प्राचीन काल के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने जिसे इन्द्र, यम, मातरिश्वान कहकर पुकारा और जिस एक अनिर्वचनीय का वेदान्ती ब्रह्म शब्द से निर्देश करते हैं।

शैव जिसकी शिव और वैष्णव जिसकी विष्णु कह कर स्तुति करते हैं, बौद्ध और जैन जिसे बुद्ध और अर्हत् कहते हैं, तथा सिख संत जिसे सत् श्री अकाल कहकर पुकारते हैं।

जिस जगत के स्वामी को कोई शास्ता, तो कोई कुमार स्वामी कहते हैं, कोई जिसको स्वामी, माता, पिता कहकर भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं, वह प्रभु एक ही है और अद्वितीय है, अर्थात् उसका कोई जोड़ नहीं है।

सेवा के मोर्चे पर स्वयंसेवक...

विचार विनिमय प्रकाशन
टी-2263 भूतल, अशोका पहाड़ी, फैज़ रोड़,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

ISBN : 978-81-930892-1-7
9 788193 089217